यशोधरा परिशीलन

(विवेचनात्मक -अध्ययन)

लेखक—
श्री शिवस्वरूप गुप्त एम० ए०, बी० टी०,
साहित्यरत्न, साहित्य भास्कर, साहित्योपाध्याय,
साहित्य भूषण, साहित्यालंकार, आचार्य आदि
रिसर्च स्कालर, भारतीय
हिन्दी विश्व विद्यालय
बम्बई

साहित्य भवन लिमिटेड
इलाहाबाद

प्रकाशक
नवयुग पुस्तक भण्डार
अमीनुद्दौला पार्क
लखनऊ

प्राक्कथन

भाग्य के निर्मम चपेटों ने मुझे उस स्थान पर ला घसीटा, जहाँ मनुष्य औरों को क्या स्वयं को ही पहिचानना भूलने लगता है। यह भटका हुआ मानव स्वयं अपने अन्तःकरण से प्रश्न करता है 'क्या वास्तव मे मेरा अस्तित्व नही है ? अपने जीवन के चंचल प्रभात में अपनी आयु के १६ बसन्त पार करके भी मै यही विचारता रहता हूँ कि इतना सब कुछ करने पर भी मुझमे गति क्यो नहीं ? काव्य, कहानी, नाटक और आलोचना आदि सभी को मै आडम्बर मात्रसमझकर केवल उन्हे मनोरंजन का साधन मात्र मानता हूँ। उपर्युक्त सभी से लगभग मुझे घृणा सी है पर यह सब होते हुए भी मै आज स्वयं भी उसी पथ का पथिक बना हुआ हूँ। मुझे स्वय इस बात का ज्ञान नही हो पाता कि मेरा जीवन मेरे वैयक्तिक आदर्शों से क्यो एकदम विपरीत है। प्रायः लोगो की धारणा है कि उन्हे कोई समझ नही पाता, किन्तु मेरे समक्ष विडम्बना यह है कि मै स्वयं को ही नही समझ पा रहा हूँ।

पूर्ण विश्वास है इस बात का कि अथक प्रयास करने पर भी मुझे इस क्षेत्र मे सफलता का मुख देखने को न मिलेगा। भाग्य के इन कठोर चपेटों से मुझे जीवन पर्यन्त संग्राम करना पड़ेगा। इस जीवन में एक क्षण के लिए भी मै शान्ति का अनुभव न कर सकूगा। यही कारण है कि मै भी जीवन-संग्राम मे

डटा हुआ हूँ। मैंने इस बात का निश्चय कर लिया है कि यदि जीवन मुझे शान्ति नहीं लेने देता तो मै भी उसे शान्ति नहीं लेने दूँगा। हम दोनो ने मिलकर एक मध्यस्थ अपना लिया है। आप कहेगे 'कौन सा ?' उत्तर है पुस्तकालय। यद्यपि यह बड़ा ही कठोर मध्य मार्ग है जो मुझे चैन की बंशी नही बजाने देता, पर क्या करूँ ? लाचारी है। जब तक कोई अन्य मध्यस्थ न मिले तब तक इसे भी कैसे छोड़ दूँ ?

सहृदय पाठक वृन्द ! इसी कठोर और अशान्ति के वातावरण मे रहकर यह पुस्तक लिखी है। ओह ! जब मैं अपनी उन कठोर एवं विषम परिस्थितियों का स्मरण करता हूँ तो मेरा हृदय बाँसो उछलने लग जाता है। मै काँप उठता हूँ अतीत की स्मृतियो से। खैर कुछ भी हो, जिस प्रकार एक बीर नवयुवक असफल रहने पर भी निरन्तर किसी कार्य के सम्पन्नार्थ प्रयास करता है और अन्त मे उसे सफलता मिलती है, वही दशा मेरी भी हुई। किसी प्रकार यह पुस्तक पूर्ण हो ही गई।

अन्त में मै अपने उन महानुभावो के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तक को यह रूप देने की अप्रशंसनीय चेष्टा की। इस सम्बन्ध मे मेरे परम मित्र श्री सूरजकुमार गुप्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पुस्तक को दुबारा देखने और उसमे यथास्थान सुधार करने का श्रेय मेरी जीवन-सहचरी श्रीमती गिरीशकुमारी गुप्ता को प्राप्त है। इसके लिए मै किन शब्दों में उनकी प्रशंसा करूँ।

—शिवस्वरूप गुप्त

विचार-माला

यशोधरा मैथिलीशरण गुप्त की एक श्रेष्ठतम कृति है। -साहित्य मे अब तक इस प्रकार के काव्यो का सर्वथा अभाव रहा है। इस लघु काव्य मे कवि ने गम्भीर भावो, उत्कृष्ट विचारो और रम्य कल्पनाओं का अविरल स्रोत प्रवाहित किया है। यही कारण है कि पाठक और श्रोता कभी रसस्वादन से वंचित नहीं रहता। किन्तु फिर भी भावों की गहनता के कारण काव्य के मूल भावो तक पहुँचने मे पाठक को अवश्य कठिनाई अनुभव होती है।

प्रस्तुत पुस्तक यशोधरा-परिशीलन में लेखक न गुप्त जी की उत्तम पुस्तक के सभी पहलुओ पर विचार किया है। आरम्भ से अन्त तक किसी भी विषय को लेखक ने अछूता नही छोड़ा है। सच तो यह है कि यह पुस्तक अब तक प्रकाशित समस्त पुस्तकों में श्रेष्ठ है। आशा है, इससे हिन्दी-साहित्य के परीक्षार्थियो का बड़ा उपकार होगा।

सरला सक्सेना बी० ए०, एल० टी०

प्रकाशकीय वक्तव्य

समीक्षा मानव-जीवन एवं साहित्य गत सत्य के दर्शन का सफल प्रयास है। इसका ध्येय है जीवन तथा साहित्य मे सत्यं शिवं सुन्दरम् की स्थापना तथा कुत्सित, कुरूप एवं अशिवं का वहिष्कार। प्रस्तुत पुस्तक 'यशोधरा-परिशीलन' इसी सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण है।

योग्य लेखक श्री शिवस्वरूप गुप्त एम, ए. बी. टी., साहित्य-रत्न ने राष्ट्र कवि डा० गुप्त विरचित 'यशोधरा' को भलीभाँति समझने मे सहायतार्थ इसे प्रस्तुत किया है। इसमें विद्वान् लेखक ने ऐतिहासिक तत्त्व, प्राकृतिक वर्णन, चरित्र-चित्रण, छन्द-विधान, भाषा एवं रस-सचार पर बड़ा ही मनोहारी एवं शास्त्रीय परिशीलन किया है। कृति स्वयं ही इसकी साक्षी है। कृति-पठन के पश्चात् ही मेरे कथन का सत्यासत्य जाना जा सकता है।

लोकोक्ति है "नाई बाल कितने" "यजमान सामने है" अधिक क्या कहूँ।

हाँ, परीक्षार्थियों की सुविधा के हेतु मैंने पुस्तक के अन्त मे द्वितीय भाग के रूप मे 'यशोधरा' के क्लिष्ट शब्दार्थ एवं व्याख्या तथा सम्भावित प्रश्न और जोड दिये है, जिसका सारा उत्तरदायित्व प्रकाशक का है 'परिशीलन' लेखक का उससे दूर का भी सम्बन्ध नही है।

—प्रकाशक

विषय सूची

परिचयात्मक
युगान्तर कारी भारतेन्दु

रीति-काल की सीमा जब हिन्दी-साहित्य की काली परिधि बन चुकी थी, उसी समय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का आविर्भाव हुआ। उनके द्वारा हिन्दी-साहित्य ने अन्धकार मे प्रकाश का मुख देखा। जब किसी रीतिकालीन कवि मे मुग़ल-सम्राट् औरंगजेब के विरुद्ध आन्दोलन करने का साहस न रहा; तब से वे भाटो के रूप मे उन का गुण-गान कर अपनी जीविकोपार्जन करने लग गए। भारतीय साहित्य का इन्द्र भूषण इस बात को कब सहन कर सकता था। पक्षपात से अपनी दृष्टि खाली कर भारत की इस अमर-विभूति ने औरंगजेब के विरुद्ध आवाज उठाई। परिणाम-स्वरूप उसका राज-सिंहासन थर्रा उठा। आधुनिक काल के उदय-कालीन सूर्य भारतेन्दु ने भी उसी प्रकार अंग्रेजी सत्ता के प्रति भीषण विद्रोह किया। भारतीय, हिन्दी-साहित्य की इस विभूति ने उस आकर्षण का आविर्भाव किया, जिसने साहित्य-क्षेत्र मे फिर अनेको ज्वार उत्पन्न कर दिये।

आधुनिक युगीन हिन्दी-साहित्य पर भारतेन्दु बाबू ने बड़ा उपकार किया, वह उनका चिर-ऋणी रहेगा। सर्व प्रथम भारतेन्दु बाबू को यह देखकर कि भारतीय समाज की रक्षा करनेवाला इस समय कोई कवि नही है, और साहित्य, जो जीवन की धारा को अनुप्राणित करता है, गतिरुद्ध हो चुका है, बहुत बुरा लगा। कविगण राजाओं तथा नवाबो के मनोरंजन का साधन बने हुए थे, परिणाम-स्वरूप भारतीय साहित्य, गतिबद्ध न होकर गतिरुद्ध होता जा रहा था और उससे साहित्य-धारा मे विषैले कीटाणु लग रहे थे तथा अंग्रेजी सत्ता स्वेच्छा से भारतीयो का शोषण कर रही थी, यह बात भारतेन्दु बाबू को असहनीय हो उठी।

युग की विषम परिस्थितियो से विवश होकर, भारत की इस ज्योति को कमर कस कर, कवि के उत्तरदायित्व को निभाने के लिये साहित्य-क्षेत्र मे कूदना पड़ा। रीति-काल के कवियों ने कविता-किशोरी के साथ अनाचार कर उसे दोष-पूर्ण बनाकर उसकी नैसर्गिक शोभा को नष्ट कर दिया था। रीतिकालीन कवि काव्य की आत्मा, भावों से रिक्त थे। संकीर्ण दृष्टि से नायक-नायिकाओ के अंग-प्रत्यगों का अश्लील वर्णन कर, उनकी क्रियाओ को देखकर तथा राजप्रासाद के उद्यानो से सम्पूर्ण प्रवृत्ति की क्षुद्र कल्पना करके वे कविता-किशोरी को राजाओ के आगे नचाया करते थे। भाषा वही ब्रज थी, जो उनकी आज्ञा मे निरन्तर तत्पर रहती थी, चाहे जहॉ तोड-मरोड़ दी, उनके ये ही इने-गिने शब्द इधर से उधर चक्कर लगाते थे। वे उसकी शोभा को अलंकारो द्वारा सुसज्जित कर, उसकी सुन्दरता मे चार चॉद लगाने का प्रयास करते थे, तो कभी कभी कविता-किशोरी अति भार के कारण शिथिल हो जाती थी। राजा लोग उनकी ऐसी ही अवस्था पर धन दे डालते थे। उस समय साहित्य मे शृंगार-रस की ही प्रधानता थी। सूरदास ने यदि महाभारत के कृष्ण को अवतार रूप मे चित्रित किया तो रीति-काल के भाटों ने अपनी वासनाओ की तृप्ति के हेतु उन्हे नायिकाओ के साथ प्रेम-विहार करनेवाला ही अपने काल मे चित्रित किया। भगवानोपासना के क्षेत्र मे कविता का विषय एक प्रकार से पतनोन्मुख होता गया, फलस्वरूप वह जन-साधारण के कल्याण की वस्तु न हो पाया, उसे बुरी भॉति राजा लोगों ने अपने प्रासादों मे बन्द कर लिया। भक्तिकालीन कवियों ने भगवान् का गुणगान करना ही अपना प्रमुख ध्येय समझा, तो रीति-काल के कवियों ने राजाओ की प्रसंशा-मात्र कर, पैसा कमाना ही अपना प्रधान कर्तव्य चुना। भौतिक कष्टों के निवारण की युक्ति किसी भी काल के कवियो ने नहीं बतायी। एक शब्द में यूॅ भी कहा जा सकता है कि यदि

भक्ति-कालीन कवियों की अपनी कल्पना, अनुभूति तथा आदर्शवादिता के स्वर्ग में चक्कर लगाने का प्रयास किया, तो रीति-काल के भाट उनसे नीचे रहकर यथार्थता के नर्क मे घूमते रहे। कहने का तात्पर्य यह है कि इन भाटों को राजाओं के महलो तक ही अपनी पहुँच अच्छी प्रतीत होती थी। कविता-किशोरी के चरण अभी तक पृथ्वी तथा मानव-लोक तक नही आये थे। बस यही वह विषय था, जो कि हमारे अज्ञात-कोहनूर भारतेन्दु के हृदय मे काँटे के समान पीडा उत्पन्न कर रहा था। उनका विचार था कि कविता-मानव लोक की वस्तु है, अतः मानव की वन्दना ही उसका ध्येय होना चाहिए। कविता की भाषा उस समय बडी अस्त-व्यस्त थी, अत. वह कब तक शैली के डगमगाते हुए पैरो से प्रगति कर सकती थी। भारतेन्दु बाबू ने इस क्षेत्र मे अपने कदम उठाये और एकदम ही भाषा-शैली तथा भावो मे आवश्यक परिवर्तन करने के महत्व को समझा। उन्होने अपने मित्रो सहित इस स्वप्न को वास्तविकता देने की चेष्टा की, किन्तु भाव-परिवर्तन के पश्चात् रुक गये। यह कार्य सबसे अधिक दुस्तर था। उन्होने रीतिकालीन कवियों के भावो की धारा को रोककर, उसे राष्ट्रीय भावो का नवीन रूप प्रदान किया, जो कि जन-साधारण के निकट था। उपासना-क्षेत्र में भगवान् से राजा और राजा से जनता का ही क्रम अभी आवश्यक था, अतः उन्होने नारा लगाया—

अंग्रेज-राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै दुःख ख्यारी॥

उक्त नारे की ध्वनि ने जनता के कानो मे एक भारी गूँज उठाकर उसे चौंका दिया। इससे साहित्य-क्षेत्र मे युगान्तर हुआ। देखते-देखते ही इस लघु नारे ने एक भयकर रूप अपना लिया। राजाओ से घृणा की जाने लगी और भिखारियों की पूजा। अंग्रेजों के विपक्ष मे आन्दोलन करने का साहस जनता में आया। परि-

णाम-स्वरूप एक भीषण स्वाधीनता-संग्राम के लिए जनता कटिबद्ध हुई। सन् १६०० तक व्रजभाषा के पुराने ही सागर मे उसका जल हिलोरें मारता रहा।

द्विवेदी-युग

उस युग का अन्त सन् १६०० में होता है, जिसमे रीतिकाल की भाव-परम्परा को बदलने का आश्चर्य-जनक प्रयास किया गया था। भारतेन्दु बाबू के निरन्तर प्रयास करने पर भावधारा ने पुराना रूप त्यागकर नवीन रूप धारण कर लिया। उन्होने रीतिकाल की उस भावना को, जो कि नायिकाओ के प्रति थी, गंगा की पावन धारा मे मिलाकर राष्ट्र, मातृ-भूमि तथा समाज-सेवा की भावना को जन्म दिया। इस परिवर्तन के पश्चात् भाव-धारा के उस रूप को भी बदलने की आवश्यक्तानुभव की गई, जिसमे अब तक वह बह रही थी। यह कार्य १६००--२० तक लगभग बीस वर्षों मे सम्पन्न हो सका। बीस वर्षों का यही समय द्विवेदी युग कहा जाता है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इस युग के निर्माण करने वाले माने जाते है। साहित्य के भाव—क्षेत्र मे जो महत्वपूर्ण क्रान्ति हुई, वह समय यदि भारतेन्दु के कारण भारतेन्दु युग के नाम से विभूषित किया जाता है, तो द्विवेदी युग मे भी साहित्य मे एक ऐसा महान् परिवर्तन हुआ जो सदा स्मरण रहेगा। उस काल की भाव-क्षेत्रीय क्रान्ति तो द्विवेदी-युग मे भी चलती ही रही, किन्तु इस समय भाषा-क्रान्ति भी पूर्ण सफल रही। १६०० मे प्रयाग से सरस्वती का प्रकाशन आरम्भ हुआ। यह पत्रिका मानो भाषा का पुनरुद्धार करने के लिए ही निकाली गई थी। इसके तीन वर्ष पश्चात् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी इस पत्रिका के सम्पादक नियुक्त हुए। आचार्य जी कवि भी थे, अतः कविता को जोकि साहित्य का प्रधान अंग थी, वे पुष्पित तथा फलित देखना चाहते

थे। उनकी लेखनी ने सर्व-प्रथम काव्य की भाषा मे आवश्यक परिवर्तन करने का आन्दोलन उठाया। जनता को उस समय यह प्रयास केवल मूर्खता-पूर्ण ही जँचा। आचार्य जी ने व्रज का वहिष्कार कर खडी बोली को उसका आसन दिया। व्रजभाषा के प्रेमियों द्वारा इस बात का भीषण विरोध किया गया, पर आचार्य जी ने इस पर तनिक भी ध्यान न दिया। वे अवाध-गति से इस मार्ग की ओर उन्मुख होने लगे। सरस्वती द्वारा व्रज का पूर्णरूपेण बहिष्कार कर दिया गया। फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य की काया ही पलट गई। बड़े बडे प्रतिभाशाली कवि द्विवेदी जी के पथ-प्रदर्शन द्वारा खडी बोली को सर्वोच्च स्थान देने के लिए प्रयत्नशील हो गये। आचार्य जी ने सभी कवियो को खड़ी बोली में कविता करने का आदेश दिया और संस्कृत के ग्रन्थो का अध्ययन कर कवियो तथा कविता के सम्बन्ध मे अपने विचार व्यक्त किए। कविता के सम्बन्ध मे नवीन विषयो की ओर संकेत कर उन्होने भारतेन्दु-युग की भाव-क्रान्ति को और भी अग्रसर किया।'

भारतेन्दु काल में पुराने छन्दो का प्रयोग किया जा रहा था। इस युग मे छन्दो ने भी अपना पुराना रूप त्यागकर नवीन रूप अपनाया। कवियो ने संस्कृत के वर्ण-वृत्तो को भी अपनाया और उसमे सुन्दर तथा मनोहर रचनाएँ करना आरम्भ कर दी। द्विवेदी जी के शिष्यो के अतिरिक्त अन्य कवियो ने भी उनके पथ का अनुसरण किया।

कसौटी बदलकर नए-पुराने सभी विषय कविता के लिए चुने गए। भावों मे नवीन मिश्री घोलकर उन्हे रसीला एवं मधुर बनाया गया। द्विवेदी जी के आदेशानुसार कवि किसी भी विषय को अपनी कविता का क्षेत्र बना सकता था, परन्तु नवीनता की कसौटी पर कस कर। इस प्रकार रामायण, महाभारत, पुराण आदि

में से अनेको विषय लेकर उनमे राष्ट्र-प्रेम का समावेश कवियों ने किया। भावो का हनन होने के भय से छन्दों के तुकान्त सम्बन्धी बन्धन की भी चिन्ता त्याग देने का आदेश द्विवेदी जी ने दिया।

इस युग मे भाषा पर व्याकरण का नियंत्रण रखने का बडा ध्यान दिया गया। अलंकारो की कृत्रिमता की अवहेलना कर भाषा की नैसर्गिक शोभा बढाने का प्रयास इसी युग मे हुआ।

रतिकाल के सम्पूर्ण काव्य मे प्रकृति की उपेक्षा दिखाई पडती है। भारतेन्दु ने काव्य म प्रकृति-वर्णन को स्थान देने के लिए अथक परिश्रम किया। किन्तु उस समय ब्रजभाषा के कारण, वे अपने प्रयास मे असफल रहे। द्विवेदी युग मे इसका प्रस्तुत वस्तु के रूप मे वर्णन होने लगा। अलंकार प्रकृति के चिह्न बन गए। कविता से अलंकारो का इस युग मे वहिष्कार किया जाने लगा। इस युग के कवियो ने प्रकृति-मिश्रण के प्रति विशेष रुचि दिखाई। गिरि, निर्झर, सरिता, सागर आदि का सजीव चित्रण हमे इस काल मे मिलता है। द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से अनेक कवियो ने तो अपने काव्य के मध्य एवं अन्त मे प्रकृति का सजीव चित्रण करने की परिपाटी ही चला दी।

इतिवृत्तात्मक काव्य ही इस युग मे प्रचुरता से लिखे गए। सबसे बडी विशेषता इस युग की यही थी। ऐसे अनेको वृत्त, जोकि अब तक कवियो द्वारा उपेक्षित रहे थे, द्विवेदी जी ने सरस्वती द्वारा कवियो के सम्मुख रखे। इस प्रकार पुराने कथानको (Plots) को खोज-खोजकर काव्य का रूप इस युग मे दिया गया।

छायावाद का आविर्भाव भी इसी युग मे हुआ। सन् १९१३ मे प्रसाद, पन्त, निराला आदि को छायावादी धारा का स्रोत साहित्य-क्षेत्र मे तीव्र गति से प्रवाहित हुआ, जो १९२० के लगभग युगान्तर का कारण बना। परन्तु द्विवेदी-युगीन कवियो ने इससे प्रभावित होकर भी स्वय को इस धारा से पृथक रखा। उन्होंने

प्राचीनता की अवहेलना तथा नवीनता का त्याग न किया। वे सदा हिन्दी-साहित्य की प्रगति करने में तत्पर रहे।

उस युग का प्रतिनिधित्व करने के कारण आज के गीत-युग में भी इतिवृत्तात्मकता को न भूल सके। उन्होंने गीतों को काव्य की नवीन शैली में लिखकर प्रबन्ध काव्यो मे उनका प्रयोग किया। समाज का झुकाव छायावाद तथा रहस्यवाद की ओर देखकर, उन्होने भी नवीन ढंग से अपने काव्य मे इसका समावेश किया। **'रंग में भग'** से लेकर आज तक के समस्त काव्यो में उन्होने अनेक चरण रखे, किन्तु वे द्विवेदी-युग की भाषा-शैली, अलंकार, भाव तथा वस्तु आदि का त्याग न कर सके।

कविता मे कथा की प्रधानता ही द्विवेदी-युग की सबसे बड़ी विशेषता थी। इस दृष्टि से गुप्तजी ने उस युग का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व किया। इस बात की पुष्टि गुरुकुल, जयद्रथ वध, विकट-भट, पंचवटी, वैतालिक साकेत, द्वापर, यशोधरा तथा नहुष आदि काव्यो से होती है। सामाजिक समस्याओ की गुप्त जी ने कभी अवहेलना न की। उनके काव्य मे ईश्वर तथा राजाओ की प्रधानता होते हुए भी, उसमे मानव के सुख-दुःख को व्यापक करने का अनुपम प्रयास किया है। पुराणो तथा धर्मग्रन्थो से सम्बन्धित अनेको कथाएँ आपने लिखी है। यही कार्य द्विवेदी युग के सभी कवियो ने करना चाहा किन्तु फिर भी गुप्त जी को छोडकर उनमें से किसी को युग का प्रतिनिधित्व करने का श्रेय प्राप्त न हुआ।

द्विवेदी-युग का एक महत्वपूर्ण सन्देश था—करुणा-मूलक मानव-प्रेम, अनहितार्थ बलिदान एवं राष्ट्र-जागरण। यह कार्य जितनी सफलता-पूर्वक आज तक गुप्त जी करते आए है उतनी सफलता-पूर्वक कोई कवि नही कर सका। राष्ट्र-जागरण की झलक हमे 'भारत-भारती' मे दिखाई पडती है।

गुप्त जी के काव्य का मूल स्रोत द्विवेदी-युग था। वहाँ से वह

जो रूप धारण कर चला, वह रूप सामयिक प्रभावों में अपना अस्तित्व नही खो सका। रहस्यवाद ने यदि उन्हे प्रभावित किया तो वह स्वयं कथाओं की उलझन में खो गया। छायावाद ने उन पर अपना प्रभाव डालने का प्रयास किया, तो वह भी उसी में लीन हो गया। प्रगतिवाद तथा गान्धीवाद के तो उनके समीप आकर मानो पैर ही झुक गए। यद्यपि गुप्तजी की कुछ रचनाओं पर छायावाद का प्रभाव पड़ा, किन्तु फिर भी वह द्विवेदी-युग की व्यापकता को नष्ट करने मे सफल न हुआ। झंकार, साकेत तथा यशोधरा आदि मे जो भी विशेषताएँ पाई गईं वे छायावाद और प्रगतिवाद के युगों के समीप होते हुए भी द्विवेदी-युग का ही प्रतिनिधित्व करती हैं।

साराश यह है कि द्विवेदी-युग की मूल प्रवृत्तियों का अध्ययन किए बिना गुप्तजी की काव्य-धारा परखना दुस्तर ही नहीं, असम्भव ही है। वे आज तक जो कुछ लिखते आ रहे हैं उस सबकी जड़े द्विवेदी-युग की भूमिका मे है। संक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि गुप्तजी द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि थे।

कवि परिचय

आधुनिक काव्य-सम्राट् कवि-वर मैथिलीशरण गुप्त का आविर्भाव संवत् १९४३ चिरगांव (झाँसी) मे हुआ था। गुप्त जी के पिता श्रीरामचरण गुप्त बड़े ही काव्य-प्रेमी तथा हरिभक्त थे। वैष्णव-धर्मावलम्बी होने के कारण गुप्तजी के काव्य मे भी उसकी छाप मिलती है। गुप्तजी द्विवेदी युग मे प्रस्फुटित होकर खड़ी बोली काव्य-धारा के प्रतिनिधि के रूप मे हिन्दी-साहित्य के काव्य-क्षेत्र को उन्नति-पथ पर अग्रसर करने की प्रेरणा करते रहे है। इसी से उनकी गणना हिन्दी के प्रमुख काव्यकारों मे की जाती है। वे वास्तव में खड़ी बोली के प्रवर्तक हैं। उन्होंने अपने काव्य को

सर्वत्र, जातीय और राष्ट्रीय, नैतिक और धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक, सास्कृतिक चेतना से युक्त कर रखा है। गुप्तजी के काव्य में युग जीवन को प्रेरित और संचालित करनेवाली सभी विचार-धाराओ और परम्पराओ ने साम्य रूप से स्थान प्राप्त किया है। उनका काव्य सर्वाङ्गीण और व्यापक रूप से आधुनिक युग का प्रतिनिधि सिद्ध होता है। इस लिए गुप्त जी आधुनिक युग के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं।

जिस समय गुप्तजी ने हिन्दी-काव्य-क्षेत्र मे पदार्पण किया, उस समय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के संरक्षण मे खड़ी बोली हिन्दी कविता का माध्यम बनने का उपक्रम कर रही थी। यह वह समय था, जब श्रीधर पाठक खडी बोली और ब्रज दोनो के आकर्षण मे फॅस कर अपने लिए कविता का कोई भी माध्यम निश्चित नही कर पा रहे थे। यद्यपि 'एकान्त वासी' योगी के रूप मे उन्होंने खडी बोली मे कविता करने का आभास दिया था, परन्तु उनकी मनोवृत्ति बार-बार उन्हे ब्रज की ओर आकृष्ट कर रही थी। 'काश्मीर सुखमा' लिखकर आपने अपने आपको सिद्धहस्त कोमल कान्त के रूप मे प्रकट किया है। उनका ब्रजभाषा पर स्नेह अन्त तक लक्षित होता है। उनकी कविता-कामिनी ब्रज और खडी बोली के पालने मे लोरी लेती है। अन्य शब्दों मे पाठकजी को खडी बोली के प्रवर्तक का श्रेय दिया जा सकता है, किन्तु उनकी आस्था ब्रज के ही प्रति थी। एक ओर हरिऔधजी अपने प्रियप्रवास द्वारा हिन्दी मे युगान्तर उपस्थित कर रहे थे, दूसरी ओर श्री मैथिलीशरण गुप्त आचार्य द्विवेदीजी के स्वप्नो को कार्य रूप मे परिणत कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे थे। गुप्त जी की कविता को हम निम्न वर्गों मे विभक्त कर सकते है।

१ राष्ट्रय-चेतना। २ सांस्कृतिक सन्देश।

३ युग जोवन की चिन्ता धारा।

राष्ट्रीय चेतना:—गुप्त जी का प्रारम्भिक काव्य भारत-भारती है। उर्दू के विख्यात कवि मौलाना हाली के छप्पय मे जो मुसलमानो को जातीयता की चेतना प्रदान की गई है, वही गुप्तजी ने अपनी भारत-भारती मे रखी है। इस पुस्तक में कवि ने अपनी जातीयता की भावना निहित कर दी है। स्वय कवि के ही शब्दों में:—

× × ×

हम कौन थे, क्या हो गए है, और क्या होगे अभी।
आओ विचारे आज मिलकर यह समस्याये सभी।

भारत-भारती' मे अतीत का गौरव-गान लक्षित होता है। उसमें वर्तमान युग के प्रतिशोध, क्षोभ और व्यथा एवं भविष्य की आशाएँ तथा स्वप्न भरे पड़े है। स्वर्ण तुल्य भारत की पावन भूमि के स्वर्णिम अतीत के दर्शन मे उक्त ग्रन्थ के कवि ने अपनी चिर-संचित श्रद्धा उंडेल दी है। विद्या, कला, धर्म, शौर्य, शील, भक्ति, सभ्यता, ज्ञान और संस्कृति की अनेको झाँकियाँ भारत-भारती मे दृष्टिगोचर होती है। वह भारतीय गौरव का उदात्त चल-चित्र है। भारतीय सभ्यता एवं आर्य-संस्कृति के प्रति कवि की श्रद्धा अविचल रूप से उसमे अनुस्यूत है। वैदिक काल से भारत-भारती की रेखा आरम्भ होती है और फिर रामायण, महाभारत के युगो को लाँघती हुई बौद्ध काल को पार करती हुई तथा विक्रम का स्मरण कर उस रेखा पर आ पहुँचती है, जिसके आगे मुस्लिम साम्राज्य का उदय होता है। राष्ट्रीय चेतना की भी उस समय देश मे वही अवस्था थी। गुप्त जी ने उसी चेतना की अभिव्यक्ति की है। कवि पृथ्वीराज, प्रताप तथा शिवाजी आदि का स्मरण कर कह उठता है:—

अन्यायियो का राज्य भी क्या अचल रह सकता कभी।
आखिर हुए अंग्रेज शासक राज्य है जिनका अभी॥

भारत की सास्कृतिक चेतना को स्वामी दयानन्द ने भी प्रेरणा दी थी। उसी प्रकार गुप्त जी ने भी हिन्दू चेतना को जातीय स्वर

तो निस्सन्देह दिया है, किन्तु उसमे मुस्लिम विरोध नाममात्र को भी नहीं दीख पड़ता। यह है आपकी उदारता की भावना। गुप्त जी की दूसरी पुस्तक जयद्रथ-वध में भी राष्ट्रीय चेतना के दर्शन होते हैं। केवल अन्तर नाममात्र को है। जयद्रथ वध रस प्रधान काव्य है और भारत भारती सन्देश प्रधान। गुप्तजी की अन्य कृतियो मे भी हमे राष्ट्रीय चेतना फलती हुई दीख पड़ती है। साकेत मे भी राष्ट्रीय भावना की झलक दीख पड़ती है। उक्त पुस्तक गुप्त जी की अनुपम कृति है। राम के लोकसंग्रही रूप को उन्होने समस्त आर्य जाति के उद्धारक के रूप मे चित्रित किया है। देखिये:—

मै आर्यों को आदर्श बताने आया,
जन-सम्मुख धन को तुच्छ बताने आया।
सुख-शान्ति हेतु मै क्रान्ति मचाने आया,
विश्वासी का विश्वास बचाने आया॥
मन मे नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
सन्देश यहाँ मै नही स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥
अथवा आकर्षण प्रणय भूमि का ऐसा,
अवतरित हुआ मै आज उच्च फल जैसा।

इस प्रकार साकेत मे नर रूप नारायण के उदारचरित का गुण-गान किया गया है। परन्तु इस ग्रन्थ मे कवि का उद्देश्य यही नहीं रहा, साकेत की रचना का मूल उद्देश्य था उपेक्षिता उर्मिला का चित्रण। कवि रवीन्द्र के 'संस्कृत काव्य की उपेक्षाएँ' शीर्षक लेख से प्रभावित होकर द्विवेदी जी ने सरस्वती के काव्यकारो की उर्मिला-विषयक उदासीनता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और इसके लिए गुप्तजी को प्रेरणा दी। गुप्तजी ने इस काम को कार्यरूप

मे परिणत किया, और उक्त ग्रन्थ साकेत की रचना की। गुप्त जी श्रीराम-भक्त थे। अतः राम का उसमे उल्लेख होना परमावश्यक था। फलतः यह ग्रन्थ भी एक प्रकार से रामचरित बन गया, जिसमे उर्मिला का चरित्र अत्यन्त विशद एवं विलक्षण रूप से अंकित किया गया है।

सांस्कृतिक सन्देश—गुप्तजी ने पौराणिक आख्यान-मूलक काव्य की सृष्टि की है।

(क) जयद्रथ-वध, बक-संहार, वन-वैभव, सैरन्ध्री, द्वापर और नहुष आदि महाभारत से सम्बद्ध है।

(ख) पंचवटी और साकेत रामायण से सम्बन्धित है।

(ग) शकुन्तला और शक्ति आदि पुराणो से।

यह सब पौराणिक काव्य गुप्तजी को एक सास्कृतिक कवि के रूप मे चित्रित करते है। कवि जीवन मे शील, सौन्दर्य, सौजन्य तथा मनुष्य की समस्त सत् प्रवृत्तियो की विजय दिखाना चाहता है। इन पौराणिक काव्यों मे कवि को अपनी इच्छानुसार सारे विषय मिल गए है। पौराणिक काव्यो मे द्वापर और नहुष का इस दृष्टि से विशेष स्थान है।

कवि ने जिस स्थल पर ऐतिहासिक आधार लिया है, वहाँ भी उसके आकर्षण का आधार कोई न कोई तत्व ही है। यशोधरा नामक काव्य मे वह उसकी तपस्या और बुद्ध की महानता से प्रभावित है। गुरुकुल मे सिक्ख गुरुओ के त्याग एवं बलिदान की भावना तथा सिद्धराज मे गुजरात के सिद्धराज को श्रद्धाजलि भेट की है। इसके अतिरिक्त वंग भाषा के मेघनाद-वध, विरहणी व्रजागना आदि ग्रन्थो ने भी गुप्त जी को मुग्ध किया है। उनके नायक और नायिकाओं ने जनता के हृदय पर अधिकार कर लिया है। गुप्तजी काव्य-कला के लिए कला नही मानते। यथा—

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।

उसमे उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए ।।

यह कवि का कर्तव्य है। इसी आदेश की ओर साकेत के लक्ष्मण ने भी संकेत किया है। यथा—

हो रहा है जो यहाँ सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा।
किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ,
व्यक्त करती है कला वह ही यहाँ।
मानते है जो कला के अर्थ ही।
स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।

इस प्रकार गुप्त जी कला को आदर्श-वादिनी मानते है। उनके समस्त भावो मे नैतिक और सास्कृतिक सन्देश विद्यमान है।

युगजीवन की चिन्ता-धार—गुप्त जी के काव्य मे युग जीवन की पूरी छाया विद्यमान है। अनघ गीत काव्य मे गांधी जी के सत्याग्रह का पूरा वर्णन है। साकेत मे राम के आगे सविनय अवज्ञा भंग का चित्र जन-तंत्र के इस युग की स्मृति दिलाता है। द्वापर मे अत्याचारी राजा के प्रति विद्रोहात्मक भावना की अभिव्यक्ति और सुधार की वाणी का दिग्दर्शन हमे प्राप्त होता है। काबा और कर्बला मे मुसलमान धर्म के प्रति श्रद्धांजलि भेट की गई है। इस प्रकार गांधीवाद के सभी तत्वो ने आपके काव्य मे स्थान पाया है। गुप्त जी ने अपने काव्य मे चमत्कारात्मकता, वर्णात्मकता उपदेशात्मकता और भावात्मकता सभी का निर्देशन किया है।

रहस्यवाद—गुप्त जी की रहस्यवादी कविताओ मे भारतीय उपनिषदो का सगुण और साकार ब्रह्म झाँकता दीख पड़ता है। सर्व खाल्विदम् उनके गीतो मे साकार रूप धारण किए हुए है। कभी-कभी गुप्तजी अपने काव्य मे देव से मीरा और कबीर के समान माया का खेल खेलते है। यथा—

ध्यान न था कि राह मे क्या है कांटा कंकड़ ढोला ढेला ।
तू भागा मै चला पकड़ने, तू मुझसे मै तुझसे खेला ॥
यदि तू कभी हाथ भी आया,
तो छूने पर निकली छाया,
हे भगवान यह कैसी माया ।

झंकार मे वे विभिन्न मुक्ति के मार्गों की ओर संकेत करते है । यथा—

तेरे घर के द्वार बहुत है किसमे होकर आऊँ मै ।
सब द्वारो पर भीड लगी है, कैसे भीतर जाऊँ मै ॥

दीन दुखियो और अपाहिज प्राणियो मे आप परमात्मा के दर्शन कर कहते हैं—

गलिताङ्गो का गन्ध लगा मै,
आया फिर तू अलख—जगाये,
हट कर मैने तुझे हटाया,
बार-बार तू आया ॥

इस प्रकार हम गुप्त जी को एक सफल रहस्यवादी कवि पाते है ।

गीतकार गुप्त जी—गुप्त जी ने वैतालिक मे राष्ट्रीय गीत और झंकार में रहस्यात्मक तथा आन्तरिक अनुभूति के चित्र अपने प्रबन्ध काव्यों मे अंकित किए है। स्वदेश संगीत, मातृभूमि और मेरा राष्ट्र के प्रति आपकी प्रशस्तियाॅ है । गुप्त जी ने इन गीतो की उच्छिन्न धारा को गति प्रदान की है । साकेत की उर्मिला गीतों में अपनी विरहानुभूतियो की अभिव्यक्ति करती है—'मुझे फूल मत मारो' 'काली-काली कोयल बोली होली-होली-होली' 'यही आता है इस मन मे अब जो प्रियतम को पाऊँ' लाना-लाना तूली' 'आँख में छवि भूली' आदि गीतों में गुप्त जी की कोमल भावना सुरक्षित है । यशोधरा के—

१—अब कठोर हो बज्रादपि ओ कुसमादपि सुकुमारी।
आर्य पुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी॥

२—सखि वे मुझसे कहकर जाते।

३—क्या देकर मै तुमको लूँगी आदि शीर्षक गीतो मे यशोधरा का करुणोज्ज्वल रूप चित्रित हुआ है। गीत तत्व के कारण ही यशोधरा साकेत से अधिक रसवती हो गयी है। कुणाल-गीत हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ काव्यो मे से है। इस काव्य की कथा जितनी करुण और मार्मिक है उतने ही उसके गीत भी हृदय-बोधक है।

गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति

पिछले पृष्ठो मे हमने बताया कि गुप्त जी एक सम्पन्न वैश्य घराने मे अवतरित हुए थे। उनके पिता बडे रामभक्त एवं कवि थे। ऐसे वातावरण का गुप्तजी पर बडा प्रभाव पडा। वह भी अपने पिता की भाँति कविता करने लगे। समय बीतने पर उनमे काव्य-प्रतिभा का प्रकाश हुआ।

द्विवेदीजी सन् १९०३ मे 'सरस्वती नामक पत्रिका के सम्पादक नियुक्त हुए। उसी समय अनेको नवीन कवि साहित्य-क्षेत्र मे उतरे। मैथिलीशरण गुप्त की प्रतिभा द्विवेदी जी की सहायता से द्विगुणित हो गई।

गुप्त जी की प्रारम्भिक कविताएँ जो वे द्विवेदी जी के पास सरस्वती मे प्रकाशनार्थ भेजते थे, वे तुकबन्दी-मात्र ही होती थीं। सम्भवत: आधुनिक सम्पादक तो ऐसी तुकबन्दियो को देखना भी पसन्द न करेगे। यह ठीक भी है। जब किसी सम्पादक के पास अनेको श्रेष्ठ रचनाएँ होगी तो वह क्यो ऐसी तुकबंदियो को देखेगा? किन्तु द्विवेदी जी आजकल के सम्पादको के भाँति न थे। उनका उद्देश्य केवल कविताओ को छापना ही न था। एकमात्र उद्देश्य था प्रतिभा का पता लगाना और तुकबंदियो को ठीक कर उन

महत्वशाली बनाना। गुप्त जी की जो कृतियाँ प्रकाशनार्थ द्विवेदी जी के पास आती वे उनमे आवश्यक संशोधन करके ही पत्रिका मे स्थान देते थे, कभी-कभी गुप्त जी का उत्साह बढाने के लिए वे उन्हे प्रशंसा पत्र भी भेजते रहते थे। इस प्रकार के पथ-प्रदर्शन से गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति मे बड़ी वृद्धि हुई।

गुप्त जी की प्रारम्भिक कविताएँ जो सरस्वती मे प्रकाशित हुई थी वे उन्ही वृत्तो से सम्बन्धित थी जो द्विवेदी जी द्वारा सरस्वती मे प्रकाशित किए जाते थे। अनुमानतः दस वर्ष तक इसी प्रकार की रचनाएँ वे सरस्वती मे छपाते रहे। इनको उनकी साहित्यिक प्रगति का महत्व समझने के लिए पढना आवश्यक है, वैसे उनका कोई साहित्यिक महत्व नही है, क्योकि वे सब तुकान्त मात्र है।

गुप्तजी सन् १६०३ से अच्छी कविता करने लगे थे। हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र मे इस समय वे बडी धूम-धाम से आए। उनका एक पद्याश उदाहरणार्थ देखिये, जोकि तत्कालीन पत्रिका सरस्वती मे सन् १६०६ मे प्रकाशित हुआ था।

त्योंही विद्रुम पद्मराग सम है विम्बोष्ठ शोभा भली।
श्री-संयुक्त सुवर्ण यह यो है ठीक रत्नावली।
राजा के सुन बैन यो वह हुई रोमाचिता स्तंभिता,
लज्जा संकुचित प्रकम्पित तथा स्वेदाम्बु संशोभिता,

उपर्युक्त काव्य से गुप्तजी की प्रारम्भिक शैली के विषय मे जानकारी प्राप्त होती है। इसके पश्चात् उन्होने संस्कृत वृत्तो को त्यागकर भाषा को सरल, सुबोध एवं सरस रूप दिया।

'रंग मे भंग' गुप्त जी का पहला काव्य था, जो सन् १६१० मे प्रकाशित हुआ। नवीन शैली का यह काव्य उनके व्यक्तित्व की छाप से उनका ही बन गया। काव्य का प्रारम्भिक अंश देखिए:—

लोक शिक्षा के लिए अवतार था जिसने लिया।
निर्विकार निरीह होकर नर-सदृश कौतुक किया।

राम-नाम ललाम जिसका सर्व मङ्गल धाम है।
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा-सहित प्रणाम है।

मंगलाचरण की ऐसी वैष्णव प्रवृत्ति का निर्वाह अब तक गुप्तजी अपने काव्य के आरम्भ मे करते आ रहे है। उन्होने अपने धर्म-सम्बन्धी काव्यो मे भी राम की आराधना की है।

"हाडा कुंभ चित्तौड मे बूँदी के कल्पित दुर्ग की रक्षा हेतु मेवाड़ के राणा की एक विशाल सेना से टक्कर लेते हुए पृथ्वी की शरण लेते है," यह एक ऐतिहासिक गाथा है। इस प्रसिद्ध कथा को 'रंग मे भंग' नाम देकर गुप्त जी ने काव्य के रूप मे चित्रित किया है। मृत्यु को कंठ लगाने के लिए, आत्म-विश्वास के साथ हाडा कुम्भ कहता है:—

तोड़ने दूँ क्या इसे नकली किला मै मान के ?
पूजते है भक्त क्या प्रभु-मूर्ति को जड जान के ?
भ्रान्त जन उसको भले ही जड़ कहे अज्ञान से।
देखते भगवान को श्रीमान उसमे ध्यान से।
है न कुछ चित्तौड़ यह बूँदी इसे अब मानिए।
मातृ-भूमि पवित्र मेरी पूजनीया जानिए।

राष्ट्र-प्रेम की भावना का वह अंकुर इन पंक्तियो मे मिलता है—जिसने 'भारत-भारती' नामक काव्य के पश्चात् गुप्त जी को राष्ट्रीय कवि के उच्च पद पर आसीन किया।

उपर्युक्त ग्रन्थो के रचनाकाल के एक वर्ष पश्चात् सन् १९१० मे 'जयद्रथ-वध' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। इसमे प्रथम बार गुप्तजी के साहित्यिक उत्थान एवं मौलिकता के दर्शन होते है। भाषा, भाव, शैली, रस, अलंकार तथा कला की दृष्टि से यह एक सफल खण्ड काव्य की कोटि मे रखा जा सकता है। भाषा एवं भावो की सरलता एवं सरसता ने इस काव्य को जन-साधारण तक पहुँचने मे योग दिया। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियाँ देखिए:—

'रहते हुए तुम-सा सहायक प्रण हुआ पूरा नही।
इससे मुझे है जान पडता भाग्य-बल ही सब कही।
जलकर अनल मे दूसरा प्रण पालता हूँ मै अभी।
अच्युत ! युधिष्ठिर आदि का अब भार है तुम पर सभी।'

उपर्युक्त पंक्तियों से कैसी सुन्दरता टपकती है। कैसा सरल एवं तीव्र वेग है भावों का। शैली कितनी प्रभावोत्पादिनी है।

गुप्तजी की प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत भारती' ने सन् १९१२ मे राष्ट्र को सुप्तावस्था से छुड़ाने के लिए साहित्य के विस्तीर्ण क्षेत्र में अपना शंख-नाद किया। इस पुस्तक ने गुप्त जी को राष्ट्र-कवि के अमर सिहासन पर ला बिठाया। भाषा-शैली, भाव तथा कला आदि सभी दृष्टिकोणों से गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति के दर्शन इस पुस्तक मे होते है। किसी कवि ने इस युग मे इतनी ओजपूर्ण शैली मे लिखकर राष्ट्र को सजग कराने का प्रयास न किया। हिन्दू-समाज के दोषो को देखकर गुप्त जी ने नेत्रो के डोरे अरुण करके लोगो को ललकारना आरम्भ किया।

उदाहरणार्थ—

"हे ब्राह्मणो ! फिर पूर्वजो के तुल्य तुम ज्ञानी बनो।
भूलो न अनुपम आत्म-गौरव, धर्म के ध्यानी बनो।
कर दो चकित फिर विश्व को अपने पवित्र प्रकाश से।
मिट जाय फिर सब तम तुम्हारे देश के आकाश से।
क्षत्रियो ! सुनो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो।
निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेट दो।
वैश्यो ! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का।
सब धन विदेशी हर रहे है, पार है क्या क्लेश का।"

'भारत-भारती' के पश्चात् 'पद्यप्रबन्ध', 'तिलोत्तमा', 'चन्द्र-हास', 'किसान', 'वैतालिक', 'शकुन्तला', 'पत्रावली' आदि ग्रन्थ क्रमशः सन् १९१२, १९१६, १९१६, १९१७, १९१९, १९२३ तथा १९२३

मे प्रकाशित हुए। परन्तु 'भारत भारती' का स्वर इतना मधुर था कि उसके आगे जनता ने और किसी की ओर ध्यान ही न दिया। सब ग्रन्थों मे किसी विशेष प्रगति के दर्शन भी नहीं होते। हॉ, साहित्य-भाडार के रत्नो की वृद्धि गुप्तजी ने इनके द्वारा अवश्य की।

गुप्त जी का एक छोटा-सा खंड-काव्य पंचवटी सन् १६२५ मे, साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। इस लघु काव्य की सरस भाषा एवं कला ने कथा-प्रेमियो का हृदय अपनी ओर आकर्षित किया। इस काव्य मे प्रकृति-वर्णन बड़ा ही सजीव है—

उसी समय पौ फटी पूर्व में, पल्टा प्रकृति-नटी का रंग,
किरन-कंटको मे श्यामाम्बर फटा, दिवा के दमके अंग।
कुछ-कुछ अरुण, सुनहली कुछ-कुछ, प्राची की अब भूषा थी,
पचवटी की कुटी खोलकर खडी स्वय क्या ऊषा थी।
अहा! अम्बरस्था ऊषा भी इतनी सुचि स्फूर्ति न थी,
अवनी की ऊषा सजीव थी, अम्बर की-सी मूर्ति न थी।

इस प्रकार का जीता-जागता प्रकृति-वर्णन क्या पूर्ववर्ती काव्यो मे उपलब्ध हो सकता है? सच पूछा जाय तो गुप्तजी की यह रचना भी उनकी साहित्यिक प्रगति की साक्षी दे रही है। 'अनघ' तथा 'स्वदेश-संगीत' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुए, जिसमे गुप्तजी की साहित्यिक प्रगति की नवीन गति दीख पडती है।

सन् १६२५ के पश्चात् गुप्त जी ने अपने काव्य को नवीन साँचे में ढाला। परिणाम-स्वरूप धारा की गति मे तीव्रता आई। अब वे हिन्दू धर्म के उन्नायक बन कर कविता द्वारा राष्ट्र को चेताने के लिए सन्नद्ध हुए। उन्होंने हिन्दुत्व और राष्ट्र-प्रेम को एक मान कर हिन्दुओ की सामाजिक बुराइयो का उन्मूलन करने के लिए अपनी वाणी का सदुपयोग किया। ऐतिहासिक कथाओ को उन्होंने नवीन ढंग से सुसज्जित किया। त्रिपथगा, वन-वैभव, शील, सैरन्ध्री आदि काव्य जो सन् १६२८ मे प्रकाशित हुए—इसी परिश्रम का फल है।

महाभारत से सम्बन्धित कथाओ को वन-वैभव, शक्ति आदि नाम मिला। सिक्ख गुरुओ के धर्म की रक्षार्थ गुरुकुल की रचना की गई। विकट भट मे उन्होने राजपूत गाथा को चित्रित कर इतिहास के पृष्ठो को स्वर्ण से मढ़ा। परन्तु इन सब रचनाओ से गुप्त जी की विशेष प्रगति की बात नहीं सोचनी चाहिए। वास्तव मे इन रचनाओ मे गुप्त जी की कला के उस अंकुर ने विकास पाया, जो साकेत मे जाकर कला का प्रचारक बना। सन् १६२६ मे एक रहस्यवादी कविताओ का संग्रह 'झंकार' नाम से प्रकाशित हुआ। इस रचना मे भी गुप्त जी की साहित्यिक प्रगति के कुछ चिन्ह अवगत होते है।

सन् १६३२ मे गुप्त जी ने एक अनुपम कृति हिन्दी-साहित्य को भेंट की थी। यह कृति थी साकेत, जिसने गुप्तजी को महाकाव्यकारो की कोटि मे ला बिठाया। नवीन युग की नवीन साँचे मे ढली हुई यह गाथा मौलिकता तथा उच्च कोटि की कल्पना लिए हुए है। अलंकारो की अनूठी गति, अभिव्यंजना की मत्त चाल, भाषा का मधुरिमा और संवादो का आकर्षण इसमे देखते ही बन पड़ता है। कथानक पर आधुनिकता का रंग चढ़ाकर गुप्तजी ने इस काव्य की सुन्दरता को द्विगुणित कर दिया है। आधुनिक युग के इस दोष को कि खड़ी बोली मे कोई महाकाव्य नहीं है, गुप्त जी ने दूर कर दिया। राम की कथा को मौलिकता के साथ चित्रित करने का प्रयास इस काव्य मे हुआ है। अयोध्या मे ही पूरी रामकथा समाप्त होती है। इसी कारण इसका नाम साकेत रक्खा गया है। पात्रो के चरित्रो मे बहुत कुछ परिवर्तन करने से गुप्त जी ने युगो के सारे कलंक धो डाले है। उपेक्षिता उर्मिला का तो इसमे उद्धार ही हो गया है। ऐसा भासित होता है कि मानो उसी के कल्याणार्थ यह ग्रन्थ लिखा है। उर्मिला को प्रधानता देने की धुन मे ग्रन्थ का महत्व कुछ कम हो गया है। कुछ भी हो, यह कहा जा सकता है कि

तत्कालीन सभी परिस्थितियो का प्रभाव इस ग्रन्थ पर लक्षित होता है। यह काव्य गुप्त जी की साहित्यिक प्रगति का साक्षात् प्रमाण है।

दूसरे वर्ष एक और कृति यशोधरा प्रकाश मे आई। यह भी तत्कालीन परिस्थितियो के प्रभाव से न बच सकी। गान्धीवाद की स्पष्ट झलक गुप्त जी के इस काव्य मे दीख पडती है। गुप्त जी का यह काव्य चम्पू काव्य की श्रेणी मे आता है। इस पुस्तक में गुप्त जी ने वियोगिनी यशोधरा की करुण कहानी अंकित कर, बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति तक का वृतान्त दिया है। यह भी कवि की साहित्यिक प्रगति का एक चिह्न है।

क्रमशः १६३४ ३६ और १६४० मे गुप्तजी ने हिन्दी-साहित्य को मंगल-घट द्वापर, सिद्धराज तथा नहुष आदि छोटी-छोटी रचनाएँ भेंट की। इसके बाद भी गुप्त जी बराबर लिखते रहे। फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य को अजित आदि रचनाएँ प्राप्त हुई।

प्रारम्भ से लेकर अबतक गुप्त जी ने अपनी लेखनी को एक ही मार्ग पर चलाया है। उनका एक ही साहित्यिक ध्येय रहा है और उसी का उन्होने अब तक अनुसरण किया है। उन्होने समकालीन प्रभावों को ठुकराने का प्रयास नही किया है, वरन् उन सब मे रस घोल कर, उन्हे अपना ही बना लिया है। यही कारण है कि वह रहस्यवाद तथा प्रगतिवाद के युगो मे अपनी इतिवृत्तात्मक शैली को जीवित रखकर राष्ट्र-कवि तथा महाकवि पद को प्राप्त कर सके। यही सब उनकी साहित्यिक प्रगति की महत्ता है।

हिन्दी-साहित्य में गुप्तजी का स्थान—गुप्त जी कला जीवन के लिए मानते है। इसी लिए आपने समाज के हित के लिए साधना एवं मर्यादा का सन्देश दिया है। आपका महाकाव्य चिरन्तन आदर्श के साथ-साथ वर्तमान युग के आदर्श को भी प्रदान करता है। सन् १६१० से १६२० तक खड़ी बोली हिन्दी की भाषा और

शैली का सबसे सुन्दर रूप गुप्त जी की ही संस्कृत पदावली और भाषा-वैभव एवं पदावली की संगीतात्मकता से बडी प्रेरणा मिली है। सन् १६३६ मे गीतवाद और छायावाद का सुन्दर समन्वय गुप्त जी ने कर दिया। इस प्रकार गुप्त जी खडी बोली हिन्दी के गगन-चुम्बी प्रासाद के अनगढ पत्थर के रूप मे, नीव मे लगे हुए काव्य-प्रासाद को दृढता और स्थायित्व प्रदान कर रहे है। इस प्रासाद के निर्माण मे जहाँ आपने कला पूर्ण चित्र विचित्र अलंकारो से रंजित काव्य-प्रासाद को सौंदर्य-पूर्ण बनाया है, वहाँ आपने इस कलाभवन मे ऐतिहासिक, पौराणिक एवं धार्मिक मूर्तियाँ भी स्थापित की है। राम, सीता, लक्ष्मण, उर्मिला, यशोधरा, बुद्ध, शकुन्तला पॉडव, कुणाल, सिद्धराज आदि उसी प्रकार के चित्र है। गुप्त जी ने अपनी काव्य चित्रपटी पर युग विशाल भारत का बडा गौरव मूर्ति सग्रह उपस्थित किया है। आपने अपने कौशल के आधार पर नवीन सजधज के साथ वाणी पर राष्ट्र पताका उड़ाई है। वाणी की अनुपम छाया उनके ऊपर है। वह तथा उनकी कल्पना धन्य है।

इस प्रकार संक्षेप मे हम कह सकते है कि गुप्त जी हिन्दी-साहित्याकाश के उदय-कालीन सूर्य तथा खडी बोली को गौरान्वित करनेवाले कवि सम्राट् है।

यशोधरा लेखन का उद्देश्य

गुप्तजी ने साकेत महाकाव्य की रचना करने के पश्चात् यशोधरा चम्पू काव्य की रचना क्यो की ? इस प्रश्न ने जन-साधारण के हृदय-पटल पर एक प्रकार की मत-भेद की रेखाएँ अंकित कर दी है। यह प्रश्न इस दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है कि गुप्तजी की सभी रचनाएँ 'कला, कला के लिए का अपवाद है। उनकी प्रत्येक रचना का कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य है।

इस प्रश्न का समाधान करने से पूर्व किसी भी रचना के उद्देश्य की कसौटी पर विचारना आवश्यक है। उद्देश्य लेकर काव्य की रचना करनेवाले कवियो की किसी भी रचना का उद्देश्य निम्न बातो से पहचाना जा सकता है :—

१—कवि की भावना।

२—कवि के संस्कार।

३—कवि का चिन्तन।

४—कवि के विचारो पर तत्कालीन परिस्थितियो का प्रभाव।

इन बातो पर मनन करने से पूर्व हमे गुप्तजी द्वारा काव्य के प्रारम्भ मे लिखी गई भूमिका पर दृष्टिपात करना होगा। वे लिखते है—

"भाई सियारामशरण,

× × × ×। मेरी शक्ति पर विचार किए विना ही ऐसे प्रश्न किया करते हो, कविता लिखो, गीत लिखो, नाटक लिखो। अच्छी बात है। तो कविता लो, गीत लो, नाटक और लो गद्य, पद्य, तुकान्त-अतुकान्त सभी कुछ, परन्तु वास्तव मे कुछ भी नही।"

इन पंक्तियो से ऐसा भासित होता है कि आपने यशोधरा की रचना अनुज के विभिन्न विषयो पर लेखनी चलाने के लिए किए गए हठ की पूर्ति के लिए की। गुप्त जी साहित्य-जगत् मे कवि के ही रूप मे प्रख्यात है, गद्यकार के रूप मे नही। सम्भव हो सकता है कि गद्यकार के क्षेत्र मे प्रवेश करने के अभिप्राय की अनिच्छा से उन्होने यशोधरा की रचना की हो, जो चम्पू मात्र बनकर रह गई।

परन्तु जब हम भूमिका से आगे बढ़ते है, तो काव्य की वास्तविक आत्मा के दर्शन होते है। गुप्तजी लिखते है—

भगवान् बुद्ध और उनके अमृत तत्व की चर्चा तो दूर की बात है, राहुल जननी के दो-चार आँसू ही तुम्हे इसमे मिल जाएँ तो बहुत

समझना और, उनका श्रेय भी साकेत की उर्मिला देवी को है, जिन्होंने कृपा-पूर्वक कपिलवस्तु के राजोपवन की ओर मुझे संकेत किया।

इन पंक्तियो में हमे कवि की भावना तथा यशोधरा की रचना का उद्देश्य ज्ञात होता है। गुप्त जी बड़े भावुक कवि है। साकेत की रचना करते समय उनकी भावुकता की तृप्ति 'उर्मिला' के आँसुओं से नहीं हुई, मानों उसी अतृप्ति की पूर्ति करना यशोधरा लेखन का उद्देश्य थी। उनकी भावना पर मानों साकेत की उर्मिला ने ऐसा प्रभाव डाला कि उनको यशोधरा लिखने के लिए विवश होना पड़ा। राजप्रासाद का उपवन ही जिसके लिए वियोग-स्थल बन गया हो तो उसके अश्रुओं की क्या सीमा? राज-प्रासाद की हरएक वस्तु, अतीत के सुखों की स्मृति, प्रियतम की याद, वियोगाग्नि को कितनी प्रबल कर देती होगी, इसकी कल्पना हेतु मानों गुप्त जी की कल्पना भी द्रवित होकर कविता बन गई।

उपर्युक्त चार बातें यशोधरा की रचना का उद्देश्य समझने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होती हैं। सभी बातो पर मनन करने के पश्चात् हमे निम्न चार बातें यशोधरा की रचना का महा उद्देश्य जान पड़ती हैं—

१—वैष्णव-भावना।

२—उपेक्षिता का सम्मान।

३—स्त्री-जाति की महत्ता का प्रतिपादन।

४—राजनीतिक गान्धीवाद और साहित्यिक रहस्यवाद का प्रभाव।

अब हम प्रत्येक का पृथक्-पृथक् विवेचन करेंगे। पहली बात को ही देखिये। यशोधरा के मुख-पृष्ठ की निम्नपंक्तियाँ—

अबला जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आँखों में पानी॥

जब हम देखते हैं तो ऐसा भासित होता है कि वैष्णव-धर्म के करुणा-मूलक संस्कार इन शब्दों में मुखरित हो रहे हैं। हमें सहसा—

"वैष्णव जण तो तेणे कहिए,
जे पीर पराई जाणे रे।"

यह शब्द स्मरण हो जाते है। इसे देख कर ऐसा भासित होता है, मानों पराई पीर को जानने के लिए मोक्ष की खोज में विना कुछ कहे-सुने प्रासाद त्यागकर चले जानेवाले सिद्धार्थ के वियोग की विरहाग्नि में जलने वाली गोपा की अन्तर्व्यथा को काव्य के रूप में साकार करना ही कवि का उद्देश्य रहा हो। "मेरी वैष्णव-भावना ने तुलसी दल देकर यह नैवेद्य बुद्धदेव के सम्मुख रक्खा है" कवि के इन शब्दों से भी इसका स्पष्टीकरण हो रहा है।

आचार्य द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से, उपेक्षिता उर्मिला को सम्मानित करने के लिए गुप्त जी ने साकेत की रचना की। इसकी रचना करते समय उन्हे यशोधरा की याद हो आई। प्रतीत होता है, यशोधरा का सम्मान करना भी उनकी कला का उद्देश्य बन गया। फलस्वरूप यशोधरा काव्य रूप मे एक आदर्श रचना बन कर साहित्य-प्रेमियों के घर मे आयी। भूमिका से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—

"हाय! यहाँ भी वही उदासीनता। आमिताभ की आभा मे ही उनके भक्तों की आँखें चौंधिया गईं और उन्होने इधर देखकर भी नही देखा। सुगत का गीत तो देश-विदेश के कितने ही कवि-कोविदों ने गाया है, परन्तु गर्विणी गोपा की स्वतन्त्र सत्ता और महत्ता देखकर मुझे शुद्धोदन के शब्दों मे यही कहना पड़ता है कि 'गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नही मुझको।'

उपर्युक्त आधारों से स्पष्ट है कि उपेक्षिता गोपा का सम्मान करना ही गुप्तजी की यशोधरा-काव्य का उद्देश्य था।

परन्तु क्या इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त स्त्री जाति के महत्व का चित्रण करना 'यशोधरा' काव्य का उद्देश्य नहीं था ? अवश्य था, और उससे भी कहीं अधिक था जितना उपेक्षिता का सम्मान और वैष्णवता की भावना का स्पष्टीकरण। गुप्त जी ने यशोधरा की रचना कर इस बात का स्पष्टीकरण करना चाहा कि नारी के कारण ही नर को महत्व प्राप्त होता है। यदि वह घर पर बैठकर त्याग न करे, पुरुष की शुभ कामनाएँ ईश्वर से न मनाये, तो नर की क्या शक्ति जो अपने उद्देश्य मे सफल हो। पुरुष की सफलता के लिए नारी कितना त्याग कर सकती है, यही दिखाना यशोधरा का उद्देश्य है। सिद्धार्थ बन की ओर प्रस्थान करते है। यशोधरा सोचती है कि वे मुझसे कहकर गए होते। उसे प्रतिक्षण यही चिन्ता व्यथा पहुँचाती है, किन्तु बाद मे उसकी सारी चिन्ता दूर हो जाती है, क्यो कि वह उनके (गौतम) उद्देश्य को महत्व देती है और सब प्रकार की व्यथाएँ सहने को तत्पर हो जाती है। देखिए उसका त्याग—

> वाधा तो यही है, मुझे वाधा नही कोई भी।
> विघ्न भी यही है, जहाँ जाने से जगत मे,
> कोई मुझे रोक नही सकता है—धर्म से
> फिर भी जहाँ मै, आप इच्छा रहते हुए
> जाने नही पाती, यदि पाती तो कभी यहा
> बैठी रहती मै ? छान डालती धरती को।
> सिहनी-सी काननो मे, योगिनी सी शैलो में,
> सफरी-सी जल मे, बिहंगिनी-सी व्योम मे,
> जाती तभी और उन्हे खोज कर लाती मै।

प्रश्न उठ सकता है कि इतनी शक्ति रखनेवाली यशोधरा विरहाग्नि मे क्या जलती रही ? क्यो इसलिए कि उसमे शक्ति नही ? नही, शक्ति का तो प्रश्न ही नही उठता। ऊपर की पंक्तियो मे,

उसमे शक्ति ही शक्ति दीख पड़ती है, किन्तु फिर भी वह विरह-ज्वाला में क्यों जलती है ? क्या इसलिए कि वह अपने प्रियतम को अपने उद्देश्य में सफल देखना चाहती है। हां, और इसी कारण वह बड़ा से बड़ा त्याग करती है। वह नारी के त्याग का महत्व बताती हुई कहती है—

स्वय सुसज्जित करके क्षण मे
प्रियतम को प्राणो के पण मे,
हमी भेज देती है रण मे—
क्षात्र धर्म के नाते ।

उसे इस बात का दुख अवश्य है कि गौतम उससे विना कुछ कहे चले गये। वह पुरुष मार्ग की बाधा न बनकर यह स्पष्ट कर देना चाहती थी कि नारी पुरुष मार्ग की शक्ति और उत्साह का स्रोत है। इस प्रकार गुप्त जी ने स्त्री-जाति के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए यशोधरा की रचना की, ऐसा प्रतीत होता है। वह समय जब कि यशोधरा की रचना की गई थी, स्त्री-स्वातंत्र्य के आन्दोलन की जागृति का युग था। राजनीतिक परिस्थितियो से प्रभावित होकर स्त्री की महत्ता का प्रदर्शन करने के लिए यशोधरा रची गई, यह स्पष्ट है।

गाधीवाद तथा रहस्यवाद की आँधी भी इस काव्य की रचना का उद्देश्य बनी। अहिसा का आन्दोलन उस समय प्रबल वेग से प्रवाहित हो रहा था। महात्मा बुद्ध भारत में अहिसा के प्रवर्त्तक माने जाते है। अत: इस अहिसा-आन्दोलन को जीवित रखने के लिए यशोधरा लिखी गई। काव्य-शैली को देखकर पता चलता है कि रहस्यवाद से प्रभावित होकर गुप्तजी ने इस काव्य की रचना के लिए लेखनी चलाई। रहस्यवाद मे आत्मा प्रियतम के वियोग मे छटपटाती है, उसी प्रकार यशोधरा अपने प्रियतम के लिए आँसू बहाती है। गीत प्रधान शैली से यह भी भासित होता

है कि रहस्यवाद के प्रभाव ने गुप्त जी से यशोधरा का विषय ढुँढ़वा कर 'यशोधरा' काव्य लिखाया। कथा इतिवृत्तात्मकता के कारण आधार बनी।

तात्पर्य यह है कि यशोधरा सोद्देश्य लिखी गई और कवि की सफलता का प्रतीक बनी।

यशोधरा काव्य पर एक दृष्टि

आचार्यों ने काव्य के तीन भेद माने हैं—

१—प्रबन्ध-काव्य।

२—मुक्तक काव्य।

३—चम्पू काव्य।

१. प्रबन्ध-काव्य—वह काव्य होता है, जिसमें किसी कथा को लेकर कविता की धारा प्रवाहित की जाती है तथा उसका आदि, मध्य और अवसान धारा वाहिकता से निभाया जाता है।

२. मुक्तक-काव्य—यह वह काव्य होता है, जो स्फुट विषयो पर लिखा जाता है तथा जिसका पूर्वोत्तर कोई सम्बन्ध नही होता।

३. चम्पू-काव्य—वह काव्य का तीसरा भेद होता है, जो कि विषय के अनुसार नही, काव्य कलेवर के अनुसार होता है। यह चम्पू-काव्य कहलाता है, जो दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य की भेद सरणि मे आता है।

प्रबन्ध-काव्य के आचार्यों ने तीन भेद किए हैं—

१—महा काव्य।

२—खण्ड-काव्य।

३—एकार्थ काव्य।

१. महाकाव्य—वह काव्य है, जिसमे किसी बड़ी कथा किसी इतिहास-प्रसिद्ध या पुराण विदित व्यक्तियों की जीवन-गाथा को

लेकर चलती है तथा अपना विशद स्वरूप प्रस्तुत करती हुई जीवन के प्रत्येक पहलू का स्पर्श कर सम्पर्क मे आनेवाली समस्त वस्तुओं या व्यक्तियो का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करती है, और इसी कारण वह खण्डो मे विभाजित भी होती है। उदाहरण के लिए राम-चरित मानस।

२. खण्ड काव्य—वह काव्य होता है, जिसमे किसी ऐतिहासिक व पौराणिक प्रसिद्ध व्यक्तित्व का एक खण्ड-दृश्य, महाकाव्य की शैली पर प्रस्तुत किया जाता है। जैसे जयद्रथ-वध।

३. एकार्थ काव्य—ऐसे प्रबन्ध काव्य होते है जो महाकाव्य की कोटि तक नही पहुँच पाते, किन्तु अपने विशाल वर्णनों के कारण खण्ड-काव्य से ऊँचे उठ जाते है, वे एकार्थ काव्य होते है। जैसे प्रिय-प्रवास।

मुक्तक काव्य के भी तीन भेद है—

१. नीति-मुक्तक।

२. स्फुट-मुक्तक।

३ गीति मुक्तक। या गीत काव्य।

१ नीति मुक्तक—वे काव्य कहलाते है, जिसके एक छन्द मे एक ही नीति की बाते आती है। प्राचीन कवि रहीम, विहारी आदि के दोहे इसी के अन्तर्गत आते है।

२. स्फुट मुक्तक—यह ऐसे काव्य होते है, जिनमें दो चार छन्दो मे किसी भावना या पदार्थ का वर्णन किया जाता है। विद्यापति आदि का काव्य इस कोटि मे रखा जा सकता है।

३. गीत-काव्य—इस काव्य मे हृदय की क्षणिक भावनाओं को व्यक्त किया जाता है।

यशोधरा पर मनन करने से पूर्व काव्य के यह सभी भेद हमारे सामने आते है। कुछ विद्वानो ने यशोधरा-काव्य को महाकाव्य की कोटि मे रखा है। अब यह निर्णय करना है कि यशोधरा महाकाव्य

है या नहीं। ऊपर जो महाकाव्य की संक्षिप्त कसौटी दी गई है, उसके आधार पर इसे महाकाव्य कहना मूर्खता का द्योतक है। यह ग्रन्थ महाकाव्य की कसौटी पर खरा नहीं बैठता। हाँ, एक-दो पक्तियाँ उसमें ऐसी अवश्य है, जो महाकाव्यत्व के लक्षण उसमे प्रकट करती है। पर क्या एक दो पंक्तियो से उसे महाकाव्य कहना उचित होगा? नहीं? कदापि नहीं। न तो उसकी कथा ही महाकाव्य की शैली पर है और न अन्य कोई ही महाकाव्य का लक्षण उसमे विद्यमान है। गुप्त जी का साकेत भी यदि ठीक कहा जाये तो महाकाव्य की कसौटी पर ठीक नही उतरता तो फिर यशोधरा की बात ही क्या?

एकार्थ काव्य भी यशोधरा नहीं। क्योकि एकार्थ काव्य तभी हो सकता है, जब कि उसमे महाकाव्य के कुछ लक्षण पाए जाएँ।

खण्ड काव्य की कसौटी पर रख कर जब हम यशोधरा की परख करते है तो यह बात खटकती है कि उसमे कथा का विशेष प्रवाह नही है। भगवान् बुद्ध का वन-गमन, योग साधना आदि का कोई प्रसंग उसमे नहीं है। उनके सम्पर्क मे आनेवाली प्रकृति भी चित्रित नही की गई है। कथा का कोई खण्ड दृश्य उसमे चित्रित नहीं किया गया है। यदि उसमे आरम्भ से अन्त तक कुछ मिलता है तो यशोधरा के भावो का विस्तृत अंकन बीच मे आया हुआ नाटक भी उसे खण्ड काव्य के निकट नही पहुँचाता। मुझे तो उसे खण्ड काव्य कहते हुए संकोच होता है।

नीति की उसमे मुक्त छन्दो मे चर्चा नही, कथा-प्रवाह भी छिपा-छिपा चलता है। अतः नीति-मुक्तक काव्य भी नही कहा जा सकता है, विभिन्न विषयो पर उसमे स्फुट काव्य भी नही लिखा गया है। जिससे वह स्फुट मुक्तक भी नही कहा जा सकता।

शैली की प्रधानता को देखकर और वर्णित विषय पर ध्यान देकर हम उसे गीत काव्य भी नही कह सकते है। यशोधरा के

हृदयोद्‌गारो का गीतो मे अंकन हो यद्यपि अपनी प्रधानता रखते है तथापि कथा-सूत्र और नाटकांश उसे गीत काव्य से विल्कुल दूर हटा लेता है।

यशोधरा का काव्य-भेद गुप्तजी की भूमिका से स्पष्ट हो जाता है—

"लो कविता, लो गीत, लो नाटक और लो गद्य-पद्य, तुकान्त-अतुकान्त सभी कुछ परन्तु वास्तव मे कुछ भी नही।"

यहॉ 'कुछ भी नही' अंश ध्यान देने योग्य है। जो काव्य, काव्य होते हुए प्रबन्ध काव्य नही, गीत युक्त होते हुए गीत-मुक्तक नहीं, संवाद युक्त होते हुए, नाटक गद्य होते हुए गद्य काव्य नही—जो दृश्य श्रव्य काव्य नही, वह अन्त मे है क्या ? वह है वास्तव मे चम्पू काव्य। साराश यह है कि यशोधरा एक चम्पू-काव्य है। उसमे महाकाव्य, गीत काव्य, तथा खण्ड-काव्य की आत्मा डालना, मूखर्ता नही तो क्या है ?

नारी

नारी—नारी संसार की सबसे महत्वपूर्ण परन्तु अपेक्षित अंग है। नारी मे मानव-कल्याण, सहानुभूति, भावोद्‌भाविनी शक्ति तथा मानवीय शक्तियो के विकास-उद्गम एवं प्रथम-स्थान व्यापक रूप से सन्निहित रहता है। उसमे उमा-रमा और सरस्वती का निवास रहता है। वह विश्वात्मा की कोमल तथा मधुर कल्पना है। उसका मस्तिष्क है। नारी तन्तु-जाल केतु है, जो मानव-देह पर केन्द्रित शासन के समान अधिकार किए हुए है। इस लिए तो वह विश्व का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। मानव मस्तिष्क है, हृदय नही।

उसका मर्म-स्थल वहाँ व्याप्त है, जहाँ वह पतित, अबला एवं मुखापेक्षी है, जहॉ वह विश्व के मानव के लिए उसकी बिडम्बना और अहंकार के लिए तिल-तिल गलती है। नारी का शृंगार

उसका मातृत्व है। रोम-रोम मे व्याप्त मधुर एवं अस्पष्ट उसका गौरव है। मातृत्व की भावना और वेदना इन दो तारों द्वारा उसका जीवन प्रवाहित होता है। पुरुष-विहीना नारी अबला और एकाङ्गी है। वह पुरुष की पूर्ति है। उसके अभाव मे मानव-जीवन नैया खेने मे असमर्थ है। उसके सहयोग मे वह विश्व-विजय प्राप्त करता है। नारी-विहीन मानव जलरहित प्रवाह है। रसहीन मधुरता है। नारी मानव के लिए इस अथाह असीमित भवाम्बुनिधि में जहाँ उसे पल-पल कठोरता, अन्याय, पराजय, हीनता, कुप्रवृत्ति, कटुता, विरसता तथा उदासीनता से सामना करना पडता है—जहाज है। नारी प्रकाश स्तम्भ का स्थान ग्रहण करती है। भ्रम, अन्धकार से उसकी रक्षा कर उसकी साधनाओ के लक्ष्य की ओर, उसके ध्यान को केन्द्रित कर उसके प्रथम प्रदर्शन मे सहायक बनती है। अत. मातृ जाति को मनसा वाचा कर्मणा दयामूर्ति मानना श्रेयस्कर है और हीन समझना उसका अपमान है। यशोधरा मे नारीजाति की इस महत्ता को स्वयं बुद्ध ने स्पष्ट किया है। वह नारीजाति का स्पष्ट व्यापक आभार स्वीकार कर कहते है—

दीन न हो गोपे सुनो, हीन नही नारी कभी।
भूत-दया-मूर्त्ति वह मन से शरीर से।
क्षीण हुआ धन मे, क्षुधा से मै विशेष जब,
मुझको बचाया मातृ-जाति ने ही खीर से॥
आया जब मार मुझे मारने को बार-बार,
अप्सरा अनीकिनी सजाये हमे हीर से।

यशोधरा नारी-जाति की दो महान् सर्वोत्कृष्ट प्रवृत्तियो का हृदय-स्थित, दो अत्यन्त सूक्ष्म परन्तु अमृत्व अनाशवान् तारो का सतत् बहनेवाले रस-स्रोतो का प्रतिनिधित्व करती हुई दृष्टिगत होती है। वे दो स्रोत है,—'आँचल मे है दूध और आँखो में पानी' अर्थात् मातृत्व की भावना और वेदना है। इन्ही दो सूत्रो के ऊपर यशोधरा

का जीवन प्रवाहित होता रहता है। गोपा (यशोधरा) ही क्या समस्त नारी-जाति का जीवन इन्हीं दो तारो मे गतिमान है। इन्ही दो महान् भावनाओ के कारण नारी नारी है। गुप्तजी इस तथ्य से भली भॉति अवगत है। यही कारण है कि उन्होने दो ही पंक्तियो मे आदर्श स्थापित कर दिया है। यथा—

अबला—जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी।

समस्त काव्य इसी का विकास विकीर्ण एवं आधेय है। गुप्तजी का हृदय काव्य के कुछ कोमल नारी चित्रो की निर्मम उपेक्षा से विचलित हो उठा और उपेक्षिता उर्मिला तथा कैकेयी के चरित्रो को अंकित करने के पश्चात् हीना, दीना, खिन्ना एवं मलीना गोपा की कथा कहना परम धर्म समझा।

यशोधरा की कथा

यशोधरा की कथा भारत की पुरानी कहानी है। भगवान् बुद्ध की जीवनी ही यशोधरा की कथा है। कवि ने इस गाथा को महाकाव्य के रूप मे अंकित करने का प्रयास नही किया है। शैली की दृष्टि से उसका रूप गद्य-पद्य एवं काव्य चम्पू का है। कवि ने कथा की अभिव्यक्ति गीतो के रूप मे की है। सूर-सागर के समान इस ग्रन्थ की शैली भी गीतात्मक प्रबन्ध-काव्य मे है। बुद्ध जी के महाभिनिष्क्रमण की थोडी सी कथा में चाहे प्रबन्धात्मकता भले ही रही हो, परन्तु आगे चलकर उसकी साधना और गोपा के वियोग को केवल गीतो द्वारा ही भलीभाँति अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसमें गीतात्मकता की ओर विशेष आग्रह दिखाई पडता है। चार सर्ग तक गीतो की रचना करके कवि यशोधरा और राहुल के वार्तालाप में लग गया है; और फिर उसने पद्य

के स्थान पर गद्य को अपना लिया है। इसका कारण यह है कि संलाप पद्य मे विशेषत: गीतो में उतारे नही जा सकते। अत: कहना पड़ता है कि यशोधरा एक प्रयोगात्मक काव्य है। कवि अब महाकाव्य के एक बड़े विषय को गीतो के द्वारा कहने में तत्पर दीख पड़ता है।

स्थान ऐक्य—कवि ने कथा वस्तु के संगठन मे गीतात्मक प्रबन्ध-शैली अपनाई है। कथा की आधार वस्तु बुद्धजी की जीवन-गाथा है। यशोधरा इतिहास विदित अमिताभ की अर्द्धाङ्गिनी है। यशोधरा की कथा महाभिनिष्क्रमण से आरम्भ होती है। इस मर्म-स्थल को खोजकर बुद्धदेव के आन्तरिक संघर्षों को मनोवैज्ञानिक रीति से व्यक्त करने का सराहनीय प्रयास किया है। इसके पश्चात् विरहिणी यशोधरा मे आलाप-संलाप एवं मानसिक स्थिति का दिग्दर्शन कवि ने कराया है। सारी कथा कपिलवस्तु के राज-प्रासाद मे ही संपादित होती है। सिद्धार्थ, महाभिनिष्क्रमण, यशोधरा, नन्द, महाप्रजावती, शुद्धोदन, पुरजन, छन्दक, राहुल जननी, सन्धान और बुद्धदेव आदि उन्नीस अध्याय तक एक ही कथा रहती है। समस्त कथा वस्तु एक ही केतुस्थल पर चक्कर काटती है। बुद्ध जी के जीवन मे सम्बद्ध कथा, सूचना के रूप मे हमे राज-भवन मे ही बता दी जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण कथा की रंग-भूमि कपिलवस्तु का ही राज-महल रहता है। अत: स्थान ऐक्य का यशोधरा की कथावस्तु मे बड़ा सफल प्रयोग है।

घटना ऐक्य—यशोधरा मे स्थान-ऐक्य से अधिक महत्त्व घटना-ऐक्य से रहता है। कथा को घात-प्रतिघात द्वारा एक ही मुख्य कार्य के सम्पादन में सहायक होना चाहिए। यशोधरा का रंग-स्थल कपिलवस्तु है; और उसका विरह ही सबसे महत्वपूर्ण घटना है। अत: उनका कार्य यशोधरा के हृदयोद्गारो का विस्तृत अंकन है। इस दृष्टि से वह एकांगी है। समस्त कथा यशोधरा के त्याग,

तपस्या एवं कसक की तपस्या मात्र है। कथा की एकता के लिए हमें देखना चाहिए कि काव्यगत पात्र और घटनाएँ यशोधरा के चरित्र में कहाँ तक सहायक हुई हैं।

कथारम्भ में सिद्धार्थ चिन्ता-मग्न दीख पड़ते हैं। वे विचार कर रहे हैं—

घूम रहा है कैसा चक्र !
वह नवनीत कहाँ जाता है, रह जाता है तक्र !
पिसो पड़े हो इसमें जब तक,
क्या अन्तर आया है अब तक,
सहें अन्ततोगत्वा कब तक—
हम इसकी गति वक्र ?
घूम रहा है कैसा चक्र।

इसके पश्चात् कवि प्रश्न करता है—

कैसे परित्राण हम पावें ?
किन देवों को रोवें-गावें ?

वास्तव में कुछ इसी प्रकार की आन्तरिक जिज्ञासा बुद्धजी के मन में आती है। इसी जिज्ञासा के कारण मनुष्य संसार से विरक्त होकर महाभिनिष्क्रमण की भूमिका तैयार कर रहे हैं। २, ३, ४, ५ गीतों में कवि ने सिद्धार्थ की वेदना बड़ी सुन्दरता से अंकित की है। चौथे गीत में वह अपनी चरम सीमा को प्राप्त हुई है।

महाभिनिष्क्रमण के उपरान्त यशोधरा, महाप्रजावती, नन्द, पुरजन और छन्दक की मनोकथा का चित्रण कर भावी करुण चित्रों को देख सकने का साहस कवि ने प्रदान कर दिया है। युवावस्था में सिद्धार्थ उसे छोड़ गये। यही सबसे बड़ा कष्ट उसे है। भारतीय हिन्दू नारी अपने पति को कष्ट में नहीं देख सकती। यदि उसका पति कष्टग्रस्त हो तो वह चाहती है कि पति की अर्द्धाङ्गिनी होने के कारण वह भी उस कष्ट को समान रूप से सहन

करे। कथा प्रसिद्ध है कि धृतराष्ट्र की भार्या गान्धारी ने अपने पति के अन्धेपन मे साझीदार बनने के लिए ही अपने नेत्रो मे पट्टी बॉध ली थी। यशोधरा ने भी इस सिद्धान्त को स्वीकार कर छन्दक से यह सूचना पाकर कि सिद्धार्थ ने अपने बाल कटा डाले है, अपने सिर के बाल भी कटा डाले थे। शेष गोपा की कथा द्विधा प्रधान है। वह कर्त्तव्यऔर प्रेम कासंघर्ष है।

पूर्णत: बिषादमय होने पर जीवन भार स्वरूप है। इसीलिए कवि ने यत्र तत्र यशोधरा को राहुल-जननी के रूप मे वर्णन कर माता के वात्सल्य रस से पराभूत करने का भी प्रयत्न किया है। जीवन के इस सूनेपन मे पुत्र राहुल का प्रेम ही उसका एकमात्र बल है। वह कह उठती है, ऐसे समय मे भी—

'मेरी मलिन गुदड़ी मे भी राहुल-सा लाल'

अन्त में यशोधरा भिक्षु बुद्ध से मिलकर क्या देती या लेती, फिर भी वह अपना सर्वस्व राहुल को देकर कहती है—

तुम भिक्षुक बनकर आये थे, गोपा क्या देती स्वामी ?
था अनुरूप एक राहुल ही, रहे सदा यह अनुगामी
मेरे दुख मे भरा विश्व सुख, क्यो न भरु फिर मैं हामी
बुद्ध शरणं, धर्म शरणं, संघं शरणं, गच्छामिऽ

इस प्रकार नारी की आत्म समर्पण की भावना को व्यक्त कर कवि ने भारतीय संस्कृति का एक गौरव चित्र यशोधरा मे गूंथ दिया है, जिसकी समता कोई अन्य ग्रंथ नही कर सकता।

ऐतिहासिक आधार

यशोधरा काव्य में भगवान् बुद्ध के गृह-त्याग तथा ज्ञान प्राप्त कर उपदेश देने और उनके कपिलवस्तु तक लौटने की कथा है। पिछले अध्याय में हम उसकी कथावस्तु पर एक विहंगम दृष्टि डाल

चुके है। अब इस अध्याय मे हम उसकी ऐतिहासिकता पर विचार करेंगे। स्वयं गुप्त जी ने 'कथा सूत्र' मे इस कथा का सारांश दिया है। उसके कितने अंश को कवि ने अपनाया है और कितने को छोड़ने मे अपने उद्देश्य की पूर्त्ति समझी है, यह उसे पढने के बाद ज्ञात हो जायेगा। यशोधरा और गौतम की कथा 'कथा सूत्र' के अनुसार इस प्रकार है—

कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र रूप मे भगवान् बुद्ध का अवतार हुआ था। उनकी जननी माया देवी उन्हे जन्म देकर ही मानो कृत-कृत्य हो गयी। शुद्धोदन की दूसरी रानी नन्द जननी महाप्रजावती ने उनका लालन-पालन किया।

बाल्यकाल से ही उनमे वीत राग के लक्षण प्रकट होने लगे थे। शिक्षा प्राप्त करने पर उनकी और वृद्धि हुई। शुद्धोदन को चिन्ता हुई और उन्हे संसारी बनाने के लिए उन्होने उनका विवाह कर देना ही ठीक समझा। खोज और परीक्षा करने पर देवदह की राजकुमारी यशोधरा ही जिसे गोपा कहते है, उनकी वधू बनने योग्य सिद्ध हुई। यशोधरा के पिता महाराज दण्डपाणि ने सम्बन्ध स्वीकार करने के पहले वर की विद्या-बुद्धि के साथ उसके बल-वीर्य की परीक्षा लेनी चाही। सिद्धार्थ ने शास्त्र-विद्या के साथ ही साथ शस्त्र-शिक्षा भी ग्रहण की थी। परन्तु शास्त्र की ओर ही पुत्र का मनोयोग समझ कर पिता को कुछ चिन्ता हुई। तथापि कुमार सब परीक्षाओ मे अनायास ही उत्तीर्ण हो गए। "टूटत ही धनु भये विवाहू" के अनुसार यशोधरा के साथ उनका विवाह हो गया।

पिता ने उनके लिए ऐसा प्रासाद बनवाया था, जिसमे सभी ऋतुओ के योग्य सुख के साधन एकत्र थे। किसी राग-रंग और आमोद-प्रमोद की कमी न थी। परन्तु भगवान् तो इसके लिए अवतीर्ण हुए नही थे? पिता का प्रबन्ध था, जो कुछ स्वस्थ, शोभन और सजीव हो उसी पर उनकी दृष्टि पड़े। परन्तु एक दिन

एक रोगी को, दूसरे दिन एक वृद्ध को और तीसरे दिन एक मृतक को देखकर संसार की इस गति पर गौतम को बड़ी ग्लानि एवं करुणा आई और उन्होने इसका उपाय खोजने के लिए एक दिन अपना घर छोड़ दिया। उनके इस प्रयाण को "महाभिनिष्क्रमण" कहते हैं।

तब तक उनके एक पुत्र भी हो चुका था। उसका नाम था "राहुल"। अभी उसके जन्म का उत्सव भी पूर्ण न हुआ था कि कपिलवस्तु मे उनके गृह-त्याग का शोक छा गया।

रात को अपने सेवक छन्दक के साथ 'कन्थक' नामक अश्व पर चढ़कर वे चल दिये।

जिस प्रकार रुग्ण, वृद्ध और मृतक को देखकर वे चिन्तित हुए थे, उसी प्रकार एक दिन एक तेजस्वी संन्यासी को देखकर उनको सन्तोष भी हुआ था। अपने राज्य की सीमा पर पहुँचकर उन्होने राजकीय वेशभूषा छोड़कर संन्यास धारण कर लिया और रोते हुए छन्दक को कपिलवस्तु लौटा दिया। सबके लिए उनका यही सन्देश था कि मै सिद्धि-लाभ करके लौटूँगा।

सिद्धार्थ वैशाली और राजगृह मे विद्वानों का सत्संग करते हुए गयाजी पहुँचे। राजगृह के राजा बिम्बसार ने उन्हे अपने राज्य का अधिकार तक देकर रोकना चाहा, परन्तु वे स्वय अपना राज्य छोड़कर आये थे। हाँ, सिद्धि-लाभ करके बिम्बसार को दर्शन देना उन्होने स्वीकार कर लिया।

राजगृह से पाँच ब्रह्मचारी भी तप करने के लिए उनके साथ हो लिये थे, जो पंचभद्रवर्गीय के नाम से प्रसिद्ध है।

निरंजना नदी के तीर पर गौतम ने तपस्या प्रारम्भ की। वर्षों तक कठोर साधन करते रहे, परन्तु सिद्धि का समय अभी नही आया था।

उनका विगलित वसन-शरीर आतप, वर्षा, शीत और क्षुधा के कारण ऐसा अवश और जड़ हो गया कि चलना-फिरना तो दूर,

उनमें हिलने-डुलने की भी शक्ति न रह गई । विचार करने पर उन्हे यह मार्ग उपयुक्त न जान पडा और उन्होने मिताहार स्वीकार करके योग-साधन करना उचित समझा । किन्तु उनके साथी पाँचो भिक्षुको ने उन्हें तपोभ्रष्ट समझकर उनका साथ छोड दिया ।

गौतम ने उनकी निन्दा पर दृक्पात भी नही किया । वे निन्दा-स्तुति से ऊपर उठ चुके थे, परन्तु निर्बलता के कारण वे भिक्षा करने के लिए भी न जा सकते थे । इधर उनके शरीर पर वस्त्र भी नही थे । उसकी उन्हे आवश्यकता भी नही थी । परन्तु लोक मे भिक्षा करने के लिए जाने पर लोक की मर्यादा का विचार वे कैसे छोडते ?

किसी प्रकार खिसक कर पास के श्मशान से एक वस्त्र उन्होने प्राप्त किया और उसे धारण कर लिया ।

गाँव की कुछ लडकियाँ उन्हे कुछ आहार दे जाती थी । उसी से उनमे चलने-फिरने की शक्ति आ गई । सुजाता नाम की एक स्त्री ने उन्हे बडी सुस्वादु खीर भेंट की थी । कहते हैं उसे खाकर भगवान् बहुत तृप्त हुए थे ।

एक दिन निरंजना नदी को पार कर उन्होंने एकान्त मे एक अश्वत्थ वृक्ष देखा । वह स्थान उन्हे समाधि के लिए बहुत उपयुक्त जान पडा । अन्त मे वही वृक्ष 'बोधि वृक्ष' कहलाया । और वहीं समाधि मे निर्वाण का तत्व उनको दृष्टिगोचर हुआ ।

इसके पहले स्वयमार (कामदेव) ने उन्हें उस मार्ग से विरक्त करना चाहा । क्योंकि वह विषयो का विरोधी मार्ग था । सुन्दरी अप्सराये उनके सामने प्रकट हुईं, परन्तु वे ऐसे ऋषि-मुनि न थे, जो डिग जाते ।

मार ने लुभाने की ही चेष्टा नहीं की, उन्हे डराया-धमकाया भी । कितनी ही विभीषिकाये उनके सामने आयीं; परन्तु वे अटल रहे ।

स्वय जीवन-मुक्त होकर भगवान् ने जीव-मात्र के लिए मुक्ति का मार्ग खोल दिया।

कर्मकाण्ड के आडम्बर की अपेक्षा सदाचार को उन्होने प्रधानता दी और यज्ञो के नाम से होनेवाली जीव-हिसा का घोर विरोध किया।

जो पॉच भिक्षु उनका साथ छोड़कर चले गये थे, उन्ही को सबसे पहले भगवान् का उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। संसार-भर मे जिसकी धूम मच गई, काशी के समीप सारनाथ मे ही उस धर्म चक्र का प्रवर्तन हुआ। वे भिक्षुक उन दिनो वही थे।

रोहिणी नदी के तीर पर कपिलवस्तु मे भी यह समाचार कैसे न पहुँचता। शुद्धोदन ने बुद्धदेव को बुलाने के लिए दूत भेजे। परन्तु जो-जो उन्हे लेने गए थे, वे सब उनके दर्शन और उपदेश से स्वय संसार-त्यागी होकर उनके संघ मे दीक्षित हो गए। अंत मे शुद्धोदन ने अपने मंत्रि-पुत्र को, जो सिद्धार्थ का बाल्य सखा था, उन्हे लेने के लिए भेजा। वह भी भगवान् के संघ मे प्रविष्ट हो गया। परन्तु शुद्धोदन से प्रतिज्ञा कर आया था, इसलिए भगवान् को उनका स्मरण दिलाना न भूला।

भगवान् कपिलवस्तु पधारे। रात को वे नगर के बाहर उद्यान मे रहे। सबेरे नियमानुसार भिक्षा के लिए निकले। इस समाचार से वहाँ हलचल मच गई। यशोधरा को बडा परिताप हुआ। शुद्धोदन ने खेदपूर्वक उनसे कहा—"क्या यही हमारे कुल की परिपाटी है?" भगवान् ने कहा—'नही, यह बुद्ध कुल की परिपाटी है।' भगवान् राज-प्रासाद मे पधारे। सबने उनका उचित स्वागत-समादर किया। परन्तु यशोधरा उस समारोह मे सम्मिलित न हुई। उससे कहा गया तो उसने यही कहा—"भगवान् की मुझ पर कृपा होगी, तो वे स्वय ही मेरे समीप पधारेगे।" अंत मे भगवान् ही उसके निकट गए और उस समय भी महीयसी महिला ने उन्हे राहुल का दान देकर अपने महात्याग का परिचय दिया।

कविवर गुप्त जी ने यशोधरा काव्य मे ऐतिहासिक कथा के रमणीय अंशो को अपना कर अपने काव्य का स्रोत प्रवाहित किया है। उसमें सब कुछ ऐतिहासिक है। ऐतिहासिकता का विरोध करने वाला कोई भी कथांश उसमें नही आने पाया है। गीति मुक्तक होने के कारण अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण काव्य को बल प्रदान करता है, इसमे भ्रम नहीं।

यशोधरा में सम-सामयिकता

गुप्तजी की समस्त रचनाएँ कुछ न कुछ अपना मुख्य उद्देश्य लेकर चलती है और उन पर तत्कालीन परिस्थितियों की छाप भी होती है, यह बात मै पिछले पृष्ठो में देता आया हूँ। अपने समय का पूर्ण संयोग प्रतिनिधित्व करना गुप्त जी की सारी रचनाओ का उद्देश्य रहा है। गुप्तजी ने अपनी रचनाएँ उस समय लिखनी आरम्भ की थी, जब राष्ट्र मे जागृति उत्पन्न हो रही थी। समय की मॉग और उसके प्रभावो से गुप्त जी कभी पीछे नही रहे है। 'फूट का परिणाम कैसा होता है' यह दिखाने के लिए यदि उन्होंने जयद्रथ-वध लिखा तो वर्णों के दोषो का उन्मूलन कर, राष्ट्र के अतीत का स्मरण करा कर राष्ट्र में समयानुसार नव जागृति उत्पन्न करने की आकांक्षा से उन्होने "भारत-भारती" की रचना की। उनकी प्रत्येक रचना मे समसामयिकता का पुट प्राप्त होता है। साकेत जैसे महाकाव्य को उन्होने मौलिकता का पुट देकर आदर्श काव्य बना ही दिया। इसके बाद की रचनाओ पर भी सामयिकता का प्रभाव लक्षित होता है।

यशोधरा भी सामयिकता से प्रभावित हुए बिना न रुक सकी। उसमे अनेक स्थलो पर सामयिकता प्राप्त होती है। यह कहना उचित होगा कि यशोधरा की सृष्टि ही तत्कालीन प्रभावो के कारण हुई। सन् १९१९ मे महात्मा गान्धी ने सत्याग्रह को जन्म दिया।

इसी आन्दोलन के प्रभाव ने गुप्त जी से अनघ लिखाया और बाद में उसी के काव्य-स्वरूप यशोधरा लिखी गई।

सत्याग्रह-आन्दोलन में प्रत्येक नर-नारी को त्याग और संघर्ष में पूर्ण रूप से विश्वास रखना चाहिए। समस्त सृष्टि के उद्धार के लिए प्रत्येक व्यक्ति को बडा से बडा त्याग करने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिए।

गुप्त जी ने जिस समय यशोधरा की रचना की, उस समय नारी जागरण का आन्दोलन अपनी तीव्र गति से चल रहा था। गुप्त जी की यशोधरा में उस आन्दोलन की पर्याप्त छाप है। यशोधरा साधारण हृदया नहीं। वह चाहती है कि नारी-जाति किसी भी अवस्था में पुरुष से कम न रहे। नारी महान् त्याग कर सकती है, उसमें पुरुष से कहीं अधिक सहन-शक्ति कर देना चाहती है। गुप्त जी ने यशोधरा के चरित्र को लेकर नारी के सहयोग को महत्त्वपूर्ण बताते हुए भारत की स्वाधीनता में उसका सहयोग पुरुष के लिए महत्वपूर्ण बताया। उनकी यशोधरा कहती है–

सिद्धि-हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात।
पर चोरी—चोरी गए, यही बड़ा व्याघात।

× × ×

सखि वे मुझसे कहकर जाते,
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

यशोधरा इस बात के लिए बड़ी दुखी होती है कि पुरुष नारी को इतनी अयोग्यता का प्रतीक समझता है। नारी का हृदय कितना विशाल होता है, पुरुष इस बात से अपरिचित है। सबसे बड़ी त्याग-वृत्ति उसके हृदय में रहती है। वह कहती है—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को, प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती है रण में,
क्षात्र — धर्म के नाते।

इसमें गुप्त जी ने नारी का सहयोग लेने के लिए सन्देश दिया है।

आरम्भ मे सिद्धार्थ के मन मे जो अन्तर्द्वन्द्व चलता है वह सामयिकता का प्रभाव है। तत्कालीन दुखी मानव-समाज के कष्टो और दुखो को भव-भार बनाकर गुप्त जी ने सिद्धार्थ की भॉति प्रत्येक युवक को भोग-विलास छोड देने का संदेश दिया है। जब सिद्धार्थ प्राणी मात्र के दुखों को सोचते है तो ऐसा भासित होता है कि कवि अंग्रेजी राज की कुचालो से बचने की भारतीयो को चेतावनी दे रहा है—

पिसो, पड़े हो इसमे जब तक,
क्या अन्तर आया है अब तक।
सहे अन्ततोगत्वा कब तक—
हम इसकी गति वक्र ?

अंग्रेजी शासन की इस वक्र गति को कब तक सहन किया जाए ? मानो ऐसा प्रश्न कवि भारतीयो से पूछ रहा है। भव-चक्र से तात्पर्य अंग्रेजों की दमन नीति से जान पडता है। ऐसा जान पडता है कि सिद्धार्थ के रूप मे भारतीय युवक उस चक्र गति के विषैले दन्त उखाड़ने की प्रतिज्ञा करता है। मुक्ति के लिए सिद्धार्थ का महाभिनिष्क्रमण राष्ट्र के युवक का भारत की स्वाधीनता के लिए घर की छोटी सी सीमा छोड़ कर महाप्रयाण है, नारी जिसमे सहयोग की इच्छा रखती है।

मातृभूमि का महत्त्व प्रतिपादन भी हमे यशोधरा मे कई स्थलो पर प्राप्त होता है। राहुल और यशोधरा की वार्ता मे मातृभूमि की शोभा का चित्र भी जन्म स्थान के प्रति श्रद्धा रखने की दृष्टि से आया है। यशोधरा के शब्दो मे—

मधुर बनाता सब वस्तुओ को नाता है।
भाता वही उसको जहॉ जो जन्म पाता है।

सिद्धार्थ के प्रति यशोधरा की निम्न उक्ति कहना भी मातृभूमि

के प्रति प्रेम-प्रदर्शन करना है, कितना पावन दृष्टिकोण है उसका, भारत के गिरि तथा सरिताओं के प्रति। वह कहती है—

देखो, यह उत्तुंग हिमालय,
खड़ा अचल योगी-सा निर्भय।
एक ओर हो यह विस्मयमय,
एक ओर वह गात रहे।
गए हो तो यह ज्ञात रहे।
बहे उधर गंगा की धारा,
इधर तुम्हारी गिरा अपारा।
प्लावित करदे अग-जग सारा,
हाँ, युग-युग अवदात रहे।
गए हो तो यह याद रहे।

वह हिमाचल से विनय करती है—

ओ यतियो-व्रतियो के आश्रय,
अभय हिमालय! भूधर-भूप।
हम सतियो की ठंडी-ठंडी,
आहो के ओ उच्च-स्तूप।
तू जितना ऊँचा, उतना ही
गहरा है यह जीवन-कूप,
किन्तु हमारे पानी का भी
होगा तू ही साक्षी-रूप।

इस काव्य से पूर्व अनेको रचनाएँ गिरिराज को सम्बोधित करके लिखी जा चुकी थी, फिर गुप्तजी किस प्रकार उसे भूल जाते।

उस समय काव्य मे रहस्यवाद को भी स्थान मिल रहा था; अतः गुप्त जी की यशोधरा उससे कैसे बचती। कई स्थलो पर यशोधरा मे रहस्यात्मक पद है। कही-कही तो यह मिलन बिल्कुल

आत्मा और परमात्मा का मालूम होता है। देखिए एक उदाहरण—

> प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आए।
> तुम्हे हृदय मे रखकर मैने अधर-कपाट लगाए।
> मेरे हास-विलास ! किन्तु क्या भाग्य तुम्हे रख पाए।
> दृष्टि-मार्ग से निकल गए तुम ये रसमय मन भाए।
> प्रियतम ! तुम श्रुति-पथ से आए।

यशोधरा का गीतो मे लिखा जाना ही समसामयिकता का परिचायक है। रहस्यवादी कवियो की रचनाएँ गीतों के ही अधिक उपयुक्त थी। फलतः जनता ने भी गीतो को पसन्द किया। गुप्त जी ने उस समय की काव्य-धारा को देखकर यशोधरा की रचना गीतों में की।

अन्त मे कहना पडता है कि यशोधरा अन्य काव्यो की भाँति समसामयिकता से प्रभावित है।

यशोधरा में गृहस्थ चित्र

मनुष्य ममत्व की प्रतिमूर्ति है। वह संसार को अपने रंग मे रंग कर देखना चाहता है। वह अपने मे जगत् को ढूँढ़ता है और जगत् की भिन्न-भिन्न वस्तुओ मे अपने को खोजने का प्रयास करता है। कविता उसकी इसी अभिलाषा का फल है। इसीलिए कविता के द्वारा मनुष्य शेष सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। कविता मे कल्पना और भाव प्रवणता रहनी चाहिए।

यशोधरा जीवन काव्य है। उसमे यशोधरा की विभिन्न परि-स्थितियो को रखकर राग-द्वेष की क्रीड़ा-स्थली में अंकित किया है। अनेकों भाव भावनाएँ इन्ही राग-द्वेषो से पल्लवित होती है। मन अथाह सागर है। उसमे असंख्य उक्तियाँ उठती हैं। उनका

अनुमान लगाना सरल नहीं। गुप्त जी ने यशोधरा के उसी हृद्सागर में उठती भावना-तरंगो को अंकित करने की चेष्टा की है।

भावो का उत्तम और सर्व-श्रेष्ठ क्रीडा-क्षेत्र कुटुम्ब ही है। इसी कारण हमारी संस्कृति मे पारिवारिक जीवन का विशेष महत्त्व रहा है। गुप्त जी सास्कृतिक कवि है। अतः गृहस्थ-जीवन चित्र अपूर्व रहना ही चाहिए। गुप्त जी के परिवार मे सरलता, स्नेह और ममत्व का अखण्ड साम्राज्य है। इसी से आप के काव्य मे इसकी अमर झाँकी दीख पड़ती है।

यशोधरा मे कपिलवस्तु के राज-परिवार के सुख-दुख की कथा है। यह कथा यशोधरा के पति-वियोग से आरम्भ होती है, फिर भी उसमे पत्नी का आदर्श महान् रक्खा गया है। माता सीता के समान वह अपने पति को अपमानित करने वाला एक भी लांछन सुनने को उद्यत नहीं है। जिस समय गौतमी कहती है—"निर्दय पुरुषो के पाले पड़कर हम अबला जनो के भाग्य मे रोना ही लिखा है।" तो यशोधरा झट ही बोल उठती है "अरी तू उन्हे निर्दय कैसे कहती है? वे तो किसी कीट-पतंग का भी दुख नहीं देख सकते।" इन शब्दो मे गृहस्थ-जीवन के प्राण, दाम्पत्य भाव-कोष को इस प्रकार खोल कर कवि ने मर्यादा की चरम सीमा पर स्थित कर दिया है। भगवान् बुद्ध के जीवन से सम्बद्ध जन्म-जाति विरक्ति की भावना के कारण रति अथवा शृंगार भावना का समावेश काव्य मे नहीं हो पाया है।

महाभिनिष्क्रमण के समय प्रसुप्त गोपा को सम्बोधन कर सिद्धार्थ कहते है—

तू हास-विलास विनोद-पूर्ण!
अब गौतम भी हो मोद पूर्ण।

फिर यशोधरा मे संयोग को स्थान ही कहाँ रहा।
जब यशोधरा जागती है और सिद्धार्थ को नहीं पाती है तो वह

विकल होती है। परन्तु जब उसे पता लगता है कि सिद्धार्थ 'बुद्ध' बनने को जंगल चले गये है तो वह कह उठती है—

नाथ, कहाँ जाते हो?
अब भी यह अन्धकार छाया है।
हाँ! जगकर क्या पाया,
मैंने वह स्वप्न भी गँवाया है।

कितनी वेदना और पीडा इन पंक्तियो मे है, जिसको शब्दो मे व्यक्त कर सकना कठिन है। जिस समय नन्द, महाप्रजावती और शुद्धोदन दुखी होकर और यशोधरा की अवस्था पर करुण होकर, सिद्धार्थ की खोज की वार्ता चलाते है, तो यशोधरा साफ-साफ निषेध कर देती है। वह कोई भी बात पति की इच्छा के विरुद्ध नही करना चाहती। परिवार मे सुख तथा समृद्धि का समावेश तभी हो सकता है, जब परस्पर स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष न होकर एक दूसरे की चिन्ता प्रत्येक परिवार के व्यक्ति को हो। यशोधरा मे मेरे-तेरे की इस भावना का सर्वथा अभाव है। उसमे सारे घटक एक दूसरे को सुख एवं शान्ति देने की शान्त भावना से ओत-प्रोत है। बालक राहुल की निम्न भोली उक्ति—

"रह गया तेरा मुँह छोटा" यही कहके,
दादी जी अभी तो अम्ब, रोई रह-रह के।

स्पष्ट बतला रही है कि घर के समस्त प्राणी यशोधरा के मुँह की ओर देखते हैं और उसके दुख से दुखी तथा उसके सुख से सुखी रहते है। यशोधरा की गंगा, गौतमी सखियाँ और चित्रा, विचित्रा दासियाँ भी उसका दुख निवारण करने का प्रयत्न करती दीख पडती हैं। इतना ही नहीं, स्वयं अमिताभ भी इसी भावना से प्रेरित होकर यशोधरा के दुख निवारणार्थ, उसके कक्ष मे पधारते है। गुप्त जी ने यशोधरा के द्वारा हिन्दूसमाज को अपने प्रिय जनो का कल्याण करने

के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए, यह उपदेश दिया है। जो मानव के विशृंखल समाज की आवश्यक एवं महत्वपूर्ण भाग है।

दूसरी ओर यशोधरा कष्ट में होते हुए भी किसी को चिढ़ने का अवसर नही देती। वह निरन्तर अपनी मानसिक प्रवृत्तियो को सँभाले हुए सबसे उचित एवं प्रेम-पूर्ण व्यवहार ही करती है।

यशोधरा में विरह

विरह प्रेम का तप्त स्वर्ण है। वेदना की अग्नि में तप कर प्रेम की मलीनता गल जाती है और फिर जो कुछ शेष रह जाता है, वह निर्मल तथा शुद्ध होता है।

विरह मे अतृप्ति की उत्सुकता के कारण रसानुभूति की मात्रा अधिक होती है। विरह अजर-अमर है। वह आदिकाल से कवियो के हृदय मे निवास करता आ रहा है और भविष्य में भी करता रहेगा।

यशोधरा मे गुप्त जी ने गीतो के द्वारा युग युग की नारी के हृदय की वेदना को साकार रूप प्रदान किया है। उसके विरह में हृद्गत विभिन्न अन्तर्दशाओ का सूक्ष्म वर्णन हमे मिलता है।

साहित्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट बिरह की दस अन्तर्दशाओ मे, मृत्यु को छोड़ कर नौ दशाओ का मार्मिक वर्णन कवि ने यशोधरा मे किया है। नवयुवती रत्न आकाक्षाओ के समन्वित उज्वल भविष्य की कल्पना करने वाली, राज-सुख भोगी यशोधरा के लिए इस आयु में जिसमे जीवन का सार, एवं वासनाएँ होती है इससे अधिक और दुख का कारण क्या हो सकता है कि उसका जीवन-सर्वस्व, प्राण-वल्लभ, शुष्क मुक्ति की खोज मे राजपाट, गृहद्वार ही नहीं, वरन् उस समान स्त्री-रत्न को भी छोड़ गया है। उसे आशा तो यह थी कि वह अपने यौवन की उदात्त तरंगो के मध्य अपने जीवन

की उज्ज्वलता के आधार पर अपने प्रियतम को माया के बंधनो में बॉध सकेगी, किन्तु परिणाम तो इसके विपरीत निकला। यशोधरा मधुर वेदना का शनैः-शनैः सुखानुभव करना जानती थी। वह इससे भली-भॉति परिचित थी कि वेदना को कैसे दबाकर हॅसा जा सकता है। वह जानती थी कि विरहाग्नि को किस प्रकार पति-हित कामना शान्त कर सकती है। बस उसे केवल एक ही दुःख है—

सिद्धि-हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात ;
पर चोरी-चोरी गए, यही बड़ा व्याघात ॥
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ?

यह दुख उसे इस कारण और भी कष्ट देता है कि इतने अधिक समय तक साथ रहने पर भी सिद्धार्थ उसे न परख पाये—

मुझको बहुत उन्होने माना,
फिर भी क्या पूरा पहिचाना ?

× × ×

आज अधिक वे भाते ।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते ।

इसी क्षण उसके हृदय मे पति के प्रति स्त्रियोचित एक गौरव की रेखा खिच जाती है—

जाये सिद्धि पावें वे सुख से—

किन्तु नारी यशोधरा तुरन्त अपनी अन्तर्वेदना को छिपाने मे अपनी असमर्थता और अवशता प्रकट करती है। यथा—

किस पर विफल गर्व अब जागा ?
जिसने अपनाया था, त्यागा ,
रहे स्मरण ही आते !
सखि, वे मुझसे कह कर जाते ।

जब छन्दक सिद्धार्थ को राज्य-सीमा पर छोड़कर लौटा तो उसने बताया कि सिद्धार्थ ने अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र और आभूषण ही क्या, अपने सिर के बाल भी कैंची से काट दिये है, तो यशोधरा ने भी अपने काले-काले बाल सिर से उतार दिए—

जाओ, मेरे सिर के बाल !
आलि, कर्त्तरी ला, मैने क्या पाले काले व्याल ?
उलझे यहॉ न ये आपस मे सुलझे वे व्रत-पाल ;
डसे न हाय ! मुझे एडी तक विस्तृत ये विकराल ।

फिर वह स्वीकार करने लगी——

चार चूडियॉ ही हाथो मे पडी रहे चिरकाल ।
बस सिदूर-बिन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल ॥

सुहागिन नारी यही सोच सकती है। 'सुख-सुहाग की लाली' रहने से ही वह माता यशोधरा बनकर जीवन-यापन कर सकी। दु:ख मे सुख की घूंट पीकर अपने सम्मान की रक्षा कर सकी। राहुल को भगवान् बुद्ध के हाथो मे सौप कर नारी-हृदय की महान् उदारता तथा त्याग का परिचय दे सकी। उसके जीवन की सांत्वना यही थी—

मेरी मलिन गूदडी मे भी है राहुल सा-लाल !

यशोधरा इस सान्त्वना के रहते हुए भी अपना दु:ख न बिसार सकी। उस दु:ख मे वही टीस उसके कोमल हृदय को बार-बार कचोटती है कि यदि सिद्धार्थ ने उसकी जाग्रतावस्था में घर छोडा होता तो वह उन्हे हॅसकर विदा करती। स्वयं उन्हे सुसज्जित कर उनकी पूजा करती, आरती उतारती। इस प्रकार वह यह प्रदर्शित कर सकती कि किस प्रकार नारी समस्त वेदनाओ को सहन कर सकती है। वियोग उस समय यदि उसके पास आता तो—

मिला न हा ! इतना भी योग,
मै हॅस लेती तुझे वियोग !

परंतु ऐसा न हुआ और वह क्षण-क्षण जलती और घुटती है—

बिदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है;
हन्त! अन्त में यह अविनय भी तुमने मुझे दिया है।
ले न सकेगी तुम्हे वही बढ़ तुम सब कुछ हो जिसके,
यह लज्जा, यह क्षोभ भाग्य में लिखा गया कब, किसके?
मै अधीन, मुझको सब सहना, नाथ, ! मुझे इतना ही कहना।

यह नारी-हृदय की वेदना की ओर चरम सीमा है। धीरे-धीरे यशोधरा विस्मृति की ओर जा रही है। यह नारी कीवह अवस्था है, जहाँ से वह तपित स्वर्ण के समान पवित्र और उज्ज्वल होकर निकलती है। जहाँ उसके नारीत्व का उच्चतम दिग्दर्शन होता है। अपनी सुधि खोई-सी अवस्था मे उसका वियोग नाम-मात्र को ही रह जाता है। यथा—

पेड़ो ने पत्ते तक, उनका त्याग देखकर त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सबके आगे।

ऐसी अवस्था मे उसे मृत्यु भी सुन्दर प्रतीत होती है। पशु-पक्षी और लता-द्रुम भी उसकी वियोग-वेदना मे भाग लेते हुए पाये जाते है। ऐसी बेसुध अवस्था मे वह भ्रम मे कहने लगती है—

सखि, प्रियतम है वन मे?
किन्तु कौन इस मन मे?

परन्तु शीघ्र ही उसे कुछ स्मृति-सी आने लगती है और वह सोचती है—

दिव्य-मूर्ति-वंचित भले चर्म-चक्षु गल जायँ,
प्रलय! पिघल कर प्रिय न जो प्राणो मे ढल जायँ।

दुख का आधिक्य हो जाने पर मानव मृत्यु की इच्छा करने लगता है। यदि यह मनोवांछित मृत्यु उसे न मिले तो उसकी व्यथा और भी तीव्र और दुखदायक हो जाती है। नारी यशोधरा के समक्ष 'मरण' भी सुन्दर बन कर आया। उसका शरण भी उसे 'भाया'। अपनी अवस्था वर्णन कर वह स्वयं कह उठती है—

आली, मेरे मनस्ताप से पिघला वह इस बार,
रहा कराल कठोर काल सो हुआ सदय सुकुमार
नर्म सहचर-सा छाया री।

गोपा यदि सुन्दर मरण वर्णन करना चाहती है, परन्तु उसे संकोच केवल इसीलिए है कि 'स्वामी' उसको मरने का भी अधिकार न दे गये। इस प्रकार अधिकार वंचिता हो, वह कथा से दो भागों मे विभक्त हो गयी है।

उसका एक अंश तो घोषणा करता है—

सब सहने को देह बना।
जलने को स्नेह बना।
स्वामी के सद्भाव फैलकर
फूल-फल में फूटे,
उन्हे खोजने को ही मानो
नूतन निर्झर छूटे।

परन्तु उसके अन्तरतम मे गहरा पैठा हुआ दूसरा अंश कहता है—

प्रिय-स्पर्श की पुलकावलि,
मै कैसे आज बिसारूँ।
× × ×
तन गाऊँ मन मारूँ
पर क्या मै जीवन हारूँ?
उनके तप के अग्निकुण्ड से
घर-घर मे हैं जागे।
मेरे धाम हाय! फिर भी
तुम नही कही से भागे।

इन पंक्तियों में विरह, नैराश्य और मार्मिक दशा देखते ही बनती है।

यशोधरा विरहाग्नि मे भस्म हो रही है। एक क्षण बीता, दो बीते, एक घंटा समाप्त हुआ, दिन व्यतीत हुआ, मास समाप्त हुए। ग्रीष्म के पश्चात् वर्षा और फिर शरद् तथा पतझड़ का आगमन हुआ। इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा। कल के पौधे आज वृक्षो मे परिणत हो गए। प्रात: की कली पुष्प बनकर चहकने लगी। पक्षी गण कलरव कर रहे है। दिशाएँ सुगन्धित है। चातक पीऊ-पीऊ शब्द कर रहा है, परन्तु यशोधरा के वनमाली अभी तक नहीं लौटे। यशोधरा बिकल है कि कहीं—

ढुलक न जाए अर्घ्य आँखों का, गिर न जाए यह थाली,
उड न जाए पँछी पाँखों का, आओ हे गुण-शाली,
ओ मेरे वनमाली।

इस स्थान पर यशोधरा के कलेजे की हूक ने अन्तरतम से निकल कर वाणी का रूप धारण कर लिया है। इसी समय एक चातकी 'पीऊ पीऊ' चिल्ला उठी और उसके साथ ही यशोधरा का हृदय टूक-टूक होने लगा, जिसकी पीडा से विह्वल होकर वहकह उठी—

बलि जाऊँ, बलि जाऊँ चातकि, बलि जाऊँ इस रट की!
मेरे-रोम रोम मे आकर यह काँटे-सी खटकी।

अन्त में व्यथित होकर वह निराश हो जाती है। इसी समय उसे पूर्व स्मृतियाँ आने लगती है, जिनसे तिलमिला कर वह कह उठती है—

फलों के बीज फलों मे फिर आये,
मेरे दिन फिरे न हाय!
गये घन कै कै वार न घिर आये?
वे निर्झर झिरे न हाय।
मै भी थी सखि, अपने
मानस की राज-हँसनी रानी,

सपने की-सी बातें !
प्रिय के तपने सुखा दिया पानी ।

अतः हम देखते है कि यशोधरा के बिरह में नारी हृदय की उत्कंठा व्यग्रता और निराशा की मार्मिक कथा तथा भावुकता का पूर्ण रूप से प्रदर्शन हुआ है । उसका विरह अनुपम है ।

यशोधरा में वात्सल्य-रस

यशोधरा विप्रलम्भ श्रृंगार प्रधान ग्रन्थ है । इसी से इसमें करुणा-रस की परमाभिव्यक्ति हुई है । सूर एवं तुलसी ने संयोग-मिश्रित वात्सल्य की मिश्री को काव्य मे घोला था, परन्तु वियोग मातृत्व की खीझ का उत्तम प्रदर्शन गुप्त जी ने ही कराया है । अबला नारी की खीझ का प्रश्रय उसका शिशु ही रहता है । राहुल सो रहा है । अनायास वह रोने लगता है । यशोधरा उसे चुप करती हुई कहती है—

चुप रह, चुप रह हाय अभागे ।
रोता है, अब किसके आगे ?
तुझे देख पाते वे रोता, मुझे छोड़ जाते क्यों सोता ?
अब क्या होगा ? तब क्या होता ,
सोकर हम खोकर ही जागे !
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे ।

पति-भक्ता यशोधरा के हृदय की तीव्र पीड़ा और पुत्र के प्रति उसकी यह खीझ देखते ही बन पडती है । इसका यह अर्थ नहीं कि माता पुत्र की परिचर्या कामरूप मे नही करना चाहती अथवा इस कार्य से उसे दुख हो रहा है । इस कार्य को तो वह अपने जीवन का सार समझती है—

बेटा, मै तो हूॅ रोने को,

तेरे सारे मल धोने को,
हँस तू, है सब कुछ होने को।

अन्तिम पंक्ति में माता का कितना महान् त्याग निहित है। माता इसकी चिन्ता नही करती कि उसका बालक उसके लिए क्या करेगा। वह गलती है बालक के पालन के लिए। उसे और कुछ न चाहिए। उसकी आराधना का केन्द्र-विन्दु यहीहै कि—

गोपा गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है।

माता का जीवन नारी रूप मे अन्धकार मे ही रहता है। नारी की जीवन-नौका माता होकर 'जीर्ण-तरी' हो जाती है। उस समय—

जीर्ण-तरी, भूरि-भार, देख, अरी, एरी!
कठिन पंथ, दूर पार और यह अँधेरी
सजनी उल्टी बयार, बेग धरे प्रखर धार,
पद पद पर विपद-वार, रजनी घन घेरी।
जीर्ण-तरी, भूरि-भार, देख, अरी एरी!

ऐसी घन घेरी रजनी मे माता कहती है—

ठहर, बाल-गोपाल कन्हैया।
राहुल, राजा भैया!
कैसे धाऊँ, पाऊँ तुझको हार गई मै दैया,
सद्द दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध-फेन-सी शैय्या।
तूं ही एक खिवैया, मेरी पडी भँवर में नैया,
आ, मेरी गोदी मे आ जा, मै हूँ दुखिया मैया।

राहुल अब बोलने लगा है। वह कहता है—

मैया है तू अथवा मेरी दो थन वाली गैया?

राहुल यशोधरा सम्वाद मे गुप्त जी ने सरस तथा काव्य-पूर्ण भाव मार्मिकता से व्यक्त किये है, जिनसे अनुमान होता है कि माता के कोमल हृदय की कितनी परख आपको है।

घर का दीपक या तो पति होता है या पुत्र, ऐसा हिन्दू-संस्कृति मे माना गया है। इसी भावना से प्रेरित हो यशोधरा कहती है—

आ, मेरे अवलम्ब, बता क्यो
'अम्ब-अम्ब' कहता है ?
'पिता' पिता, कह बेटा,
जिनसे घर सूना रहता है।

तीसरी पंक्ति मे नारि वेदना की बलि-बेदी पर बलिदान होने की कहानी है। भारतीय हिन्दू नारी अपने प्राण-वल्लभ की सुधि तो विसारती ही नही, पर वह यही चाहती है कि यदि कोई बात करे तो पति की, चर्चा चले तो उनकी, सुधि करवाये तो उनकी। उनकी सुधि की वेसुधि मे वह यही तो चाहती है कि कोई उसे उसके 'हृदय-धन' का स्मरण कराये।

दूसरी उक्ति भी वेदना के कोमल आवरण मे, वेदना के व्यक्त करने मे—मातृत्व-भावना के सुन्दर सुमन बन कर किस प्रकार खिल उठी है। यह कोई भावुक और सरस हृदय ही जान सकता है।

यशोधरा राहुल को डिठौना लगा रही है। इसलिए कि नजर न लगे। वह किसी कुदृष्टि का शिकार न हो किन्तु राहुल पूछ बैठता है—

मान लिया आँखो मे अंजन,
माँ किस लिए डिठौना ?

यशोधरा उत्तर देती है—

यही डीठ लगने के लच्छन—छूटे खाना-पीना,

तब राहुल कितनी मार्मिकता से पूछता है, अच्छा यही बात है तो—

डीठ लगी तब स्वयं तुझे ही, तू है सुधि-बुध-हीना,
तू ही लगा डिठौना, जिसको काँटा बना बिछौना।

उक्त विवेचना से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि गुप्तजी ने यशोधरा में वात्सल्य-रस मिश्रित करुण-रस की धारा प्रवाहित कर दी है। माता पुत्र का वात्सल्यमय चित्रण कवि ने बडा ही हृदय-ग्राही किया है।

यशोधरा में प्रकृति-चित्रण

काव्य और प्रकृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। विना प्रकृति-चित्रण के काव्य की कल्पना करना कठिन है। काव्य सौंदर्य का वर्णन करता है और प्रकृति सौंदर्य का भाडार है। प्रकृति के विविध रूप मनुष्य की भावनाओ को अनन्त काल से प्रभावित करते रहे है, क्योकि प्रकृति के रूपो और व्यापारो से मनुष्य न युगो से ही परिचित है और लब्ध लुब्ध होता आ रहा है। बल्कि उनका हमारे भावो के साथ सीधा सम्बन्ध है। इसलिए उनके द्वारा इसका परि-पाक होता रहा है। काव्य मे प्रकृति के इतने अधिक वर्णन का यही कारण है।

हिन्दी मे प्रकृति के इन चित्रो का अंकन छः प्रकार से हुआ है।

१—प्रकृति का प्रकृति-चित्रण।

२—घटनाओ की पृष्ठ-भूमि के रूप मे।

३—प्रकृति उद्दीपन के रूप मे।

४—उपदेश के लिए।

५—कवि की अन्तरात्मा से अनुरंजित।

६—परम्परानुगत।

यशोधरा मे प्रकृति-चित्रण उद्दीपन के रूप मे किया गया है। यशोधरा वर्षा-ऋतु मे सिद्धार्थ की स्मृति से विकल हो उठती है और कहती है—

> जागी किसकी बाष्प राशि जो सूने मे सोती थी?
> किसकी स्मृति के बीज उगे ये सृष्टि जिन्हे बोती थी?

अरी वृष्टि, ऐसी ही उनकी दया-दृष्टि रोती थी,
विश्व-वेदना की ऐसी ही चमक उन्हे होती थी।

उसी प्रकार शिशिर के आगमन पर वह हृदय की पीड़ा को व्यक्त करती है—

किन्तु शिशिर, मे ठंडी साँसे हाय ! कहाँ तक धारूँ ?
तन गारूँ, मन मारूँ, पर क्या मै जीवन भी हारूँ ?

कितनी निराशा छिपी है इन शब्दो मे—

प्रिय के संसर्ग से जिन स्थानो पर आनन्द-विहार किया था, उन्हे देखकर पुरानी स्मृति हृदय में एक नवीन टीस उत्पन्न कर देती है। उस समय की क्रीडायें (जिस समय सिद्धार्थ उसके पास थे) याद कर वह रोहिणी से कहती है—

रोहिणी ! हाय वह तीर,
बैठते आकर जहाँ वे धर्म-धन, ध्रुव धीर
मै लिए रहती विविध पक्वान्नु भोजन, खीर,
वे चुँगाते मीन, मृग, खग, हंस, केकी, कीर

कभी-कभी आनन्द मे वह कह उठती है—

आली, पुरवाई तो आई, पर वह घटा न छाई,
खोल चॅचु-पुट चातक, तूने ग्रीवा वृथा उठाई।
उठकर गिरा शिखण्ड शिखी ने गति न गिरा कुछ पाई,
स्वयं प्रकृति ही विकृति बने तब किसका वश है भाई।

दुख में उसे समस्त जग विकृत प्रतीत होता है। उस समय तो ज्ञात होता है कि—

मैने ही क्या सहा, सभी ने
मेरी बाधा—व्यथा सही।

इस विरह-वेदना मे मौलिकता के दर्शन हमे होते हैं। यशोधरा की वेदना अब सर्वदेशीय हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति उसका अनुभव करता है। स्वयं प्रकृति ही उसकी वेदना से पीड़ित है—

बलि जाऊँ, बलि जाऊँ चातकि, इस रट की,
मेरे रोम-रोम में आकर यह काँटे-सी खटकी

× × × ×

मुझसे पहले तुम सनाथ हो, यही विनय इस घट की।

प्रकृति के प्रत्येक अवयव में यशोधरा को अपने प्रिय के दर्शन होते हैं:—

स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल-फूल में फूटे,
उन्हे खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे।

उसे जो दुख है तो केवल यही कि—

पेड़ों ने पत्ते तक, उनका त्याग देख कर, त्यागे,
मेरा धुँधलापन कुहरा बन छाया सब के आगे।
उनके तप के अग्नि-कुण्ड से घर घर में हैं जागे
मेरे कम्प, हाय ! फिर भी तुम नहीं कहीं से भागे।

ऐसी दशा में भी दु:खिनी यशोधरा अपना भार-वहन कर रही है। क्योंकि—

आशा से आकाश थमा है, श्वास-तन्तु कब टूटे ?
दिन-मुख दमके, पल्लव चमके, भव ने नव रस लूटे।
स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल-फूल में फूटे,
उन्हे खोजने को ही मानो नूतन निर्झर छूटे।

इस प्रकार शान्ति धारण करने पर भी जब—

कूक उठी है कोयल काली।

तो—

ओ मेरे वन माली !

कहकर यशोधरा का विरह से व्याकुल होना स्वाभाविक ही है। प्रिय के सम्पर्क में सभी वस्तुएँ आनन्ददायी हो जाती है, परन्तु उससे विच्छेद होने पर वही दुखदायी हो जाती हैं—

उनका यह कुंज कुटीर वही,
झड़ता उड अंशु अबीर जहाँ,
अलि, कोकिल, कीर, शिखी सब है,
सुन चातक की रट "पीव कहाँ ?"
अब भी सब साज-समाज वही,
तब भी सब आज अनाथ यहाँ ।

उसे यह आनन्द कष्ट देता है । वह कहती है कि—

मै भी थी सखि, अपने
मानस की राजहंसनी रानी

परन्तु अब—

सपने की—सी बातें ।

आनन्द-विहार की एक सम्पूर्ण कहानी अन्तर्हित है, इन शब्दो मे ।

जिस समय बालक राहुल पूछता है—

"और यह पंछी कौन बोला वाह ?"

तब यशोधरा उत्तर देती है—

"कोयल है ।"

बालक पुन. पूछता है—

माँ, क्यो इस कूक की तू हूक-सी है सहती ?

कवि ने बालक के मुख से 'हूक सी है सहती' कहलाकर वेदना का आधिक्य कोयल के सम्पर्क से व्यक्त कराया है ।

विरह मे समस्त आनन्दमयी वस्तुएँ कष्ट-दायक हो जाती है । यशोधरा शीतल पवन से पूछती है:—

पवन, तू शीतल-मन्द-सुगन्ध ।
इधर किधर आ भटक रहा है ? उधर-उधर ही अन्ध ।

पौ फटने मे इसी प्रकार कष्ट का अनुभव कर वह कहती है—

भरे है अपने भीतर आग तू
री छाती, फटी न हाय !

दुख के अधिक गम्भीर हो जाने पर वह समस्त प्रकृति मे अपने दुख का जाल फैला के देखती है और कहती है—

सब सहने को देह बना,
जलने को ही स्नेह बना।
स्वामी के सद्भाव फैल कर
फूल-फूल मे फूटे,।
उन्हे खोजने को ही मानो
नूतन निर्झर छूटे।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुप्तजी ने यशोधरा मे प्रकृति-वर्णन, यशोधरा के वियोग को ही उद्दीप्त करने के लिए किया है। गुप्तजी ने प्रकृति मे विरह भावनाओ का आरोप किया है। परन्तु सभी मे नवीनता है और बहुरंगी भावना भी। सबसे बडी बात इसमे यह है कि यत्र-तत्र विश्व-कल्याण की भावनाएँ मुखरित हो उठी है।

यशोधरा में सांस्कृतिक आधार

संस्कृति मानव-जीवन की उस अवस्था का नाम है, जब वह प्राकृत द्वेषों से ऊपर उठकर वह अपनी स्वभावगत इच्छा, आकाक्षाओ, प्रवृत्तियो निवृत्तियो का उचित सामंजस्य कर लेता है। इस अवस्था मे वह अपने राग-विरागो को व्यष्टि के तल से उठा कर समष्टि के तल पर लाता है और अपने को सापेक्षता मे देखता है। इस प्रकार सामाजिक जीवन की आन्तरिक मूल प्रवृत्तियो का समन्वय ही संस्कृति है। संस्कृति को प्राप्त करने के लिए जीवन के अन्तस्थल मे प्रवेश करना पडता है। स्थूल के आवरण के पीछे जो सत्य, शिव और सुन्दर का सूक्ष्म स्वरूप छिपा रहता है, उसी को पहिचानने का प्रयास संस्कृति है। जड़ता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की

ओर, रूप से भाव की ओर बढना उसका ध्येय है। संस्कृति का व्यक्त रूप है उपचार, विचार, विश्वास, शिल्प-कौशल।

प्रत्येक जाति एवं देश की अपनी विशेष सामाजिक प्रेरणायें आकांक्षाएँ और विश्वास होते है, जिस पर भौगोलिक आधारो एवं ऐतिहासिक परम्पराओं का प्रभाव पडता है। गुप्तजी राष्ट्रीय कवि है। उसमें भारतीयता ओत-प्रोत है। राष्ट्रीयता के क्षेत्र में उन्होंने भारतीयता को ही अपनाया है। यही उनकी प्रमुख विशेषता है।

यशोधरा का सांस्कृतिक आधार शुद्ध भारती है। इसमे भारतीय जीवन के आदर्श प्राप्त होते है। यशोधरा गृहस्थ जीवन का चित्र है। यशोधरा मूक नारी की आकांक्षाओ एवं भावनाओं का ग्रन्थ होने से उसमें हिन्दू-परिवार की रीति नीति की ही विवेचना है। यशोधरा के जीवन की गाथा हिन्दू नारी के त्याग, कर्तव्य, निष्ठा, शील एवं तपस्या की कथा है।

हिन्दू संस्कृति सदा से मानव-कल्याण के लिए अग्रसर रही है। यही बात हमे महाभिनिष्क्रमण मे परिलक्षित होती है। बुद्ध जी संसार के कष्टो को देखकर विरक्त भावना से उद्वेलित हो कहते है—

मै त्रिविधि-दुख विनिवृत्ति हेतु,
बॉधूँ अपना पुरुषार्थ-सेतु।
सर्वत्र उड़े कल्याण केतु,
तब है मेरा सिद्धार्थ नाम।
ओ क्षणभंगुर भव राम राम।

× × × ×

आ मित्र-चक्षु के दृष्टि-लाभ,
ला हृदय—विजय रस वृष्टि-लाभ।
पा, हे स्वराज्य, बढ़ सृष्टि-लाभ,
जा दण्ड-भेद, जा साम-दाम,
ओ क्षणभंगुर भव राम राम।

तब जन्मभूमि, तेरा महत्व,
जब मै ले आऊँ अमृत - तत्व,
यदि पा न सके तू सत्य सत्व,
तो सत्य कहाँ ? भ्रम और भ्राम !
ओ क्षण-भंगुर भव राम राम !

स्वयं यशोधरा को अभिमान है कि

सिद्धि-हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात ।

इसी लिए शुद्धोदन जब बुद्ध जी को खोजने का प्रस्ताव करते है तो यशोधरा मना करती है और कहती है—

तात, सोचो, क्या गए वे इसी अर्थ है,
खोज हम लावे उन्हे क्या वे असमर्थ है ?
पा लिया उन्होने किन्तु ज्ञान का उजाला ।

अत: उनको लौटाने की चेष्टा करना मानव-समाज के प्रति अन्याय करना होगा ।

जिस समय राहुल यशोधरा से प्रश्न करता है——

अम्ब, क्या पिता ने यहीं जन्म नहीं पाया ?
क्यो स्वदेश छोड, परदेश उन्हे, भाया ?

उसी समय यशोधरा उत्तर देती है—

बेटा, घर छोड वे गये है अन्य दृष्टि से,
जोड लिया नाता उन्होने सब सृष्टि से ।
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यशोधरा के द्वारा गुप्त जी ने प्रत्येक व्यक्ति मे मानव-कल्याण की अपूर्व भावना को जाग्रत करना चाहा है यही विश्व-कल्याण की भावना हिन्दू-संस्कृति की विशेषता अनन्त काल से रही है ।

सम्मिलित हिन्दू-परिवार में हिन्दू-संस्कृति की एक विशेषता है ।

सम्मिलित रहने की भावना मे 'स्व' की भावना का अन्त कर सर्वजनीन हित की उदात्त भावना को विकास देने का ही उद्देश्य निहित है। जब तक मनुष्य अपने परिवार के घटको को सान्त्वना देना न सीखेगा, तब तक वह विश्व-कल्याण के योग्य कैसे बन सकेगा ?

वैशाली के राज-परिवार में सिद्धार्थ द्वारा परित्यक्ता रहने से यशोधरा प्रतिपल पीडित एवं शोकाकुल रहती है। महाराज शुद्धोदन, महा प्रजावती एवं घर की दासियाँ चित्रा-विचित्रा तथागोपा की दासियॉ सदा उसको सान्त्वना देने की चेष्टा करती है।कभी-कभी वह माता सीता एवं गोपियो की विरह-कथा कह गोपा को धैर्य बॅधाती है। शकुन्तला की कहानी द्वारा पुनर्मिलन का विश्वास दिलाती है।

हिन्दू-संस्कृति कर्तव्य भावना को तीव्र करती है और अधिकार भावना को नकारात्मक। यह भावना यशोधरा मे सर्वत्र छिटकी मिलती है। सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण से दुखी महाराज नन्द कहते है—

आर्य, यह मुझ पर अत्याचार !
राज्य तुम्हारा प्राप्य, मुझे ही था तप का अधिकार ।
छोडा मेरे लिये हाय ! क्या तुमने आज उदार !
कैसे भार सहेगा सम्प्रति, राहुल है सुकुमार ?
आर्य, यह मुझ पर अत्याचार !
नन्द तुम्हारी थाती पर ही देगा सब कुछ वार,
किन्तु करोगे कब तक आकर तुम उसका उद्धार ?
आर्य, यह मुझपर अत्याचार !

'नन्द तुम्हारी थाती पर देगा सब कुछ वार' मे सारा ही हिन्दू सास्कृतिक इतिहास भरा पडा है। आगे जितना भी नन्द का जीवन प्रवाह चलता है, इसी उद्देश्य से गुप्तजी ने इस पंक्ति के द्वारा शुद्धोदन की शालीनता के दर्शन कराये है।

छोटे से लेकर बडे तक सभी अपना कर्तव्य पालन मे अग्रसर हो रहे हैं। तब फिर बालक राहुल भी क्यो न इस भावना से ओत-प्रोत रहता? पिता के प्रति उसका भी कोई कर्तव्य है। वह कहता है—

व्यर्थ गल गया मेरा—रसाल, मैंने स्वयं नही चक्खा था;
माँ, चुनकर सौ-सौ मे से इसे पिता के लिये बचा रक्खा था।

ऐसी प्रेम-भावना से विभोर राहुल को आशीर्वाद देते, यदि यशोधरा के साथ हम भी कह दें—

पर चेतन-भावना तभी हो तेरी
अर्पित हुई उन्हे है।

तो आश्चर्य नही।

हिन्दू नारी की आकाक्षाएँ, कर्तव्य निष्ठा, आत्मोत्सर्ग, विस्मृति एवं त्याग और तपस्या की उदात्त भावनाओ के दर्शन निम्न गीत मे होते हैं—

जाओ, मेरे सिर के बाल।
अलि, कर्त्तरी ला, मैंने क्या पाले काले व्याल!
उलझे यहाँ न ये आपस मे सुलझे वे व्रत-पाल।
डसे न हाय! मुझे एड़ी तक विस्तृत ये विकराल।
कसे न और मुझे अब आकर हेमहीर, मणि माल,
चार चूडियाँ ही हाथों मे पड़ी रहे चिरकाल।
मेरी मलिन गूदडी मे भी है राहुल-सा लाल।
क्या है अंजन-अंगराग जब मिली विभूति विशाल?
बस सिन्दूर-विन्दु से मेरा जगा रहे यह भाल,
वह जलता अंगार जला दे उनका सब जंजाल।

हिन्दू नारी इससे अधिक और क्या चाहती है। इन पंक्तियो मे पति-पत्नी के सम्बन्ध के धागे से बद्ध भी नारी के हृदय की भावनाओं का वास्तविक चित्रण गुप्तजी ने उपस्थित किया है। हिन्दू संस्कृति की शालीनता को हृदय-गत कराने का प्रयत्न कर वासनात्मक तत्वों से

आवृत नव-समाज को पवित्रता का सन्देश देकर काम-भावना का प्रतिकार किया है।

यशोधरा की इच्छा है—

बस मै ऐसी ही निभ जाऊँ।
राहुल, निज रानीपन देकर
तेरी चिर परिचर्या पाऊँ।
तेरी जननी कहलाऊँ तो
इस परवश मन को बहलाऊँ।
उबटन कर नहलाऊँ तुझको
खिला-पिलाकर पट पहनाऊँ।
रीझ-खीझ कर या रूठ-मनाकर
पीड़ा को क्रीड़ा कर लाऊँ,
यह मुख देख-देख दुख मे भी
सुख से दैव-दया-गुण गाऊँ।
स्नेह-दीप उनकी पूजा का
तुझ मे यहाँ अखंड जगाऊँ,
डीठ न लगे, डिठौना देकर,
काजल लेकर तुझे लगाऊँ।

कुमारी के पश्चात् पत्नी और पत्नी के पश्चात् माता के कर्तव्यों की पूर्ति में ही नारी जाति की करुण-कहानी निहित है जिसका अध्ययन गुप्तजी ने गम्भीरता से किया है। आपने सम्पूर्ण कला में हिन्दू-संस्कृति के आदेश एवं सन्देश यशोधरा मे भर दिये है। पत्नी एवं माता के अधिकार एवं कर्तव्यो की सुन्दर अभिव्यंजना जैसी यशोधरा में हुई है, अन्यत्र उसके दर्शन मिलना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। यशोधरा के लिये—

मरने से पहले यह जीना
अप्रिय आशंकाएँ करना,
भय खाना, आँसू पीना।

इन्हीं शब्दों से प्रभावित गुप्तजी को कहना पड़ा था—

अबला-जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी !

यशोधरा का विरह उसकी परिस्थिति की दयनीयता के कारण भी करुण बन जाता है। वह निस्सम्बल है। उसके लिए वियोग के आदर्श के अतिरिक्त अन्य कोई स्थान नही है। परिस्थिति की विषमता ने उसे परवश बना दिया है। हिन्दू नारी शील एवं लज्जा की प्रतिमूर्ति होती है। वह अपने मन की कथा छुपा कर ही संजोना चाहती है। उसको व्यक्त कर वह दूसरों पर उसका भार नहीं डालना चाहती। यही संयम, भावना हमारी संस्कृति की अपूर्व देन है। यशोधरा भी शान्त भाव से विरह सहन करती हुई कहती है—

जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
कठिन पंथ, दूर पार, और यह अँधेरी !
सजनी उल्टी बयार
वेग धरे प्रखर धार,
पद-पद पर विपद-वार
रजनी घन-घेरी।
जीर्ण-तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
जाना होगा परन्तु ;
खींच रहा कौन तन्तु ?
गरज रहे घोर जन्तु,
बजती भय भेरी
जीर्ण-तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
समय हो रहा सजल
अपने वश कौन यत्न ?
गाँठ में अमूल्य रत्न,
बिसरी सुधि मेरी।

जीर्ण-तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
भव का यह विभव साथ
थाती भर किन्तु हाथ।
ले ले कब लौट नाथ?
सौंप बचे चेरी,
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, एरी।
इस निधि के योग्य पात्र
यदि था यह तुच्छ गात्र,
तो यही प्रतीति मात्र
दैव, दया तेरी।
जीर्ण तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।

इससे अधिक दीनता, परवशता, खिन्नता एवं सहन-शीलता का परिचय और कहाँ मिल सकता है। अन्त मे यह पीड़ा इतनी अधिक हो गई कि—

यह जीवन है या मौत, समझ मे नही आता,
अब दर्द तो है, दर्द में तकलीफ नहीं है।

यशोधरा का इसी दशा का वर्णन उसी के शब्दों में सुनिए—

जाना चाहे यदि जन्म, भले ही जावे,
आना चाहे, तो स्वयं मौत भी आवे।
पाना चाहे तो मुझे मुक्ति ही पावे,
मेरा तो सब कुछ वही मुझे जो भावे।
मै मिलन शून्य मे विरह छटा सी पाऊँ,
कह मुक्ति भला, किस लिए तुझे, मैं पाऊँ।

हमारी संस्कृति में कुछ ऐसे ऐतिहासिक नाम है जिनके स्मरण मात्र से पूरा सांस्कृतिक इतिहास नेत्रो के सम्मुख घूमने लगता है। यशोधरा में इन नामो का स्मरण कराया गया है। नल और दमयन्ती दुतथा ष्यन्त और शकुन्तला, पति-पत्नी सम्बन्ध के प्रतीक है। अतः

मानना पड़ता है कि हिन्दू संस्कृति के सभी आधार-स्तम्भों को यशोधरा में अपना कर गुप्तजी ने यशोधरा को नारी-जाति का गीता बना दिया है जिसको पढकर आज ही विशृंखल नारी अनेकों पाठ सीख सकती है।

यशोधरा में आधुनिकता

सन्त कवियो ने नारी को माया कहा है और उसकी घोर निन्दा की है। कबीर-नानक आदि सभी ने नारी को दुर्गम घाटी माना है—

नारी की झाईं परतरी, अन्धा होत भुजंग।
कविरा तिनकी कौन गति, नित नारी को संग॥

——कबीर

इतना ही नहीं—

साँप बीछि को मंत्र है, माहुर झारे जात।
बिकट नारि पाले परी, काटि करेजा खात॥

——नानक

ढोल गँवार सूद्र पशु नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी।

——गोस्वामी तुलसीदास

सब कवियों ने यह कहकर नारी की निन्दा करके नवयुग के मानवता-वादियों के सामने एक विकट समस्या उपस्थित कर दी। वह सन्तों की विषय-वासना से दूर भौतिक वाद से परे रहने की भावना को सुन कर चौक पड़ता है और हिदू-समाज को अत्याचारी घोषित कर सुधार की ओर अग्रसर हो इस कार्य का अग्रदूत बनना चाहता है।

इसके अनुसार नर और नारी समाज रूपी गाड़ी के दो पहिए आज का राष्ट्रीय एवं नैतिक पतन, नारी का अपमान है।

अतः समाज-सुधारक वास्तविकता को बिना समझे इतने आगे चले जाते हैं कि वह हिन्दू धर्म एवं संस्कृति को ही इस दुरावस्था का मूल कारण मानकर उसकी जड़ को उखाड़ फेकना चाहते हैं। और नवीन ढंग से सारे समाज को नए ढाँचे में ढाल लेना चाहते है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भारतीय नारी भी अधिकार-प्राप्ति की भावना से जागरूक हो उठी है और वह भी इस नूतन युग मे अपना नवीन संसार बना लेना चाहती है।

नारी की अवस्था न सुधारी जाए, इस बात का कोई समर्थन नही कर सकता है। देश एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए सभी अंगों को स्वास्थ्य-लाभ कराना ही होगा। यही बात हमारे राष्ट्रीय कवि गुप्त जी भी मानते हैं। उनका मत है—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' स्मृतिकार मनु की इस भावना का कौन अनादर नहीं करता। हिन्दू-सभ्यता घर मे महिलाओं की पूजा का उपक्रम करती। और लघु कार्यों मे उनके मूल्यवान् परामर्श या आदेश देती हैं। हमारे यहाँ नारी के दो रूपों ने विशेष आदर पाया है। उनमें एक है पत्नी रूप और दूसरा है माता का रूप। गुप्त जी को भी यही दो रूप अधिक भाये हैं। इन्हीं दो रूपों में नारी का स्नेह, तन्मयता, कर्त्तव्य-परायणता, और साधना आदि अपने वास्तविक रूप में मुखरित होती है।

नारी अर्द्धांगिनी रहने से पुरुष में रहने वाले दोषों का परिहार करती है और उसके पूरक के रूप मे ही सामने आती है। वह अपने अधिकारो की इच्छा न करके कर्त्तव्यो की पूर्ति मे ही अग्रसर होती दीख पड़ती है। इसी भावना से प्रेरित यशोधरा कहती है—

सखि, वे मुझसे कह कर जाते,
कह तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

क्यों कि—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में

प्रियतम को, प्राणों के पण में ,
हमीं भेज देती है रण मे ,
क्षात्र-धर्म के नाते ।

नारी सदा पति का मन रखना चाहती है और सदा इसी दिशा में अग्रसर रहती है, परन्तु यह अवश्य चाहती है कि पति जो कुछ भी करे, वह उसके परामर्श से । यह भावना नवीन-युग की देन है । इसी ओर संकेत करती हुई गोपा कहती है—

मैने मुख्य उसी को जाना, जो वे मन मे लाते ।

फिर भला वह उनके शुभ कार्य में कैसे विघ्न डाल सकती थी । उसकी तो यही इच्छा है कि—

जायॅ, सिद्धि पावे वे सुख से, दुखी न हो इस जन के दुख से ।

गुप्त जी ने यशोधरा मे पति के प्रति श्रद्धा, प्रेम और त्याग की भावना का संचार किया है । यही त्याग उनके महान् व्यक्तित्व का द्योतक है । इसी भारतीय सांस्कृतिक महत्व की ओर यशोधरा राहुल को पति के लिए समर्पण-इंगित करती है ।

आज की नारी में आत्म-सम्मान की भावना का उदय पर्याप्त मात्रा में हो चुका है । उसे छोटी-छोटी बात पर ठेस लगती है । फिर भला यशोधरा पति के छिप कर चले जाने पर दुखी और व्यथित होकर रुद्ध कंठ से कह उठती है—

सिद्धि-हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात ,
पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात ।।

भला सखि तू ही बता कि यदि—

वे मुझसे कह कहकर जाते ,
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते ।

उसे सबसे बड़ा दुख यह है कि इतने दिन साथ रह कर भी—

फिर भी क्या पूरा पहिचाना !

यद्यपि—

मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।

यशोधरा कहती है कि मै किस प्रकार अपना मुख संसार को दिखाऊँगी—

सास ससुर पूछेंगे
तो उनसे क्या अभी कहूँगी मै?
हा! गर्विता तुम्हारी
मौन रहूँगी सहूँगी मै।

वह फिर कहती है कि यह तो सब होगा ही, परन्तु सबसे बड़ा दुख मुझे यह है कि क्या उन्होने मुझे इन्द्रियासक्त समझ कर यह सारी बातें नहीं बतायीं, परन्तु फिर भी यदि उन्हे मुझ पर विश्वास न था तो अपने ऊपर तो विश्वास रहना ही चाहिए था—

वे कब थे विषयो के चेरे।

फिर सन्तो की भाति नारी-जाति का इस प्रकार विज्ञ सासारिक को शोभा नही देता। इस प्रकार इन पंक्तियों मे यशोधरा मे नवयुग दीक्षिता नारी के समान नर की उस भावना का विरोध किया है जिसके आधार पर प्रसव नारी को अपना खिलौना समझता है।

'मातृवान्, पितृवान्, आचार्यवान्, पुरुषो वेद' प्राप्त वाक्य के अनुसार सबसे प्रथम माता का कर्तव्य बालक को शिक्षा-दीक्षा देना है। पिता के अभाव मे यशोधरा बालक राहुल को मनोवैज्ञानिक रीति से पूर्ण विकास करने के प्रयत्न मे संलग्न दीख पड़ती है। माँ और बेटे किस मनोयोग से एक दूसरे की बात सुनते समझते एवं देखते है; उसे देखकर आश्चर्य होता है। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार राहुल अपनी योग्यता का परिचय अपनी बाल्यावस्था मे ही देने लगता है। शिष्टाचार की बातें वह अज्ञात रूप से कितनी सरलता से बालक राहुल को

हृदयंगम करा देती है। जब कभी अवसर आता है वह उसे शिक्षा देने मे नही चूकती। आज के शिक्षा-शास्त्री बालको को खेल द्वारा शिक्षा देने के यत्न में हैं। यशोधरा राहुल को इसी प्रकार दीक्षित करने मे संलग्न दीख पड़ती है। इस प्रकार से दीक्षित बालक स्वभावत: हमारा ध्यान आकर्षित कर लेता है। कभी-कभी तो उसकी प्रौढ उक्तियो को सुनकर आश्चर्य होता है। सूरदासजी अपने वात्सल्य के लिये सर्व-श्रेष्ठ कवि माने जाते है। कहा जाता है कि वात्सल्य का वह कोना-कोना झाँक आये है। उन्होने बालक की शिशु-अवस्था का ही वर्णन किया है, बाल्यावस्था का नहीं। भक्त रहने से सूरदासजी मे बाल रूप ही आकर्षित रहा है, परन्तु बालक की तोतली भाषा मे किसे आनन्द नही आता। प्राय: जब कोई बालक अपने तर्क से चकित करने लगता हो तो दाँतो तले उँगली दबाना पड़ती है। बालक राहुल योग्य माता-पिता का होनहार बालक था। फिर यदि वह अपने तर्क से आश्चर्य-चकित करे तो इसमें शंका ही क्या है। विज्ञान के इस युग मे नन्हे से बालक के हृदय में सीधी-सादी बाते नही रम सकतीं। सांसारिक जहाँ जीवन के प्रत्येक अंग का आनन्द उपभोग करना चाहता है वहाँ वैज्ञानिक उसके प्रत्येक अंग का विवेचन करना चाहता है। इसी भावना से प्रेरित होकर कविवर गुप्तजी ने शिशु राहुल के साथ बालक राहुल की क्रिया-कलाओ का भी विवेचन किया है।

जन-तन्त्रात्मक राज्य मे कोरी कला की भावना से कला का विकास असम्भव है। इस वैज्ञानिक युग मे कला बिना उपयोगिता के आधार पर जन-साधारण तक नहीं पहुँच सकती। गुप्तजी इस भेद से भली भाँति परिचित थे। कलात्मकता के पुजारी रीतिकालीन कवियों से झुँझला कर गुप्तजी ने कहा था—

> करते रहेगे पिष्ट-पोषण, कब तलक से कवि-वरो;
> क्या कुछ कटाक्षो पर कहो अब तो जीते जी मरो।

आप का कला के सम्बन्ध में स्पष्ट मत है—

किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ।
व्यक्त करती है कला ही यहाँ ॥

इसी आधार को लेकर गुप्तजी ने गूढ़-चिन्तन, गम्भीर-मनन, प्रौढ विचार एवं युगधर्म की भावना को लेकर ही यशोधरा का काव्य-प्रासाद खड़ा किया है।

वैष्णव होते हुए भी कवि संकीर्णता, अनुदारता एवं साम्प्रदायिकता की भावना से परे हैं। तभी तो उन्होने राम की वन्दना करते हुए कहा है—

राम, तुम्हारे इसी धाम में,
नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ।
इसी देश मे हमें जन्म दो,
लो, प्रणाम हे नीरज-नाभ।
धन्य हमारा भूमि-भार भी,
जिससे तुम अवतार धरो,
भुक्ति, मुक्ति माँगे क्या तुमसे,
हमें भक्ति दो, ओ अमिताभ।

राम और बुद्ध का एकीकरण वर्तमान सर्वधर्म समन्वय-भावना से प्रेरित ही दीख पड़ता है। महाभिनिष्क्रमण के समय गुप्तजी प्रार्थना करते हैं—

हे राम, तुम्हारा वंश जात,
सिद्धार्थ, तुम्हारी भाँति, तात,
घर छोड़ चला यह आज रात;
आशीष उसे दो लो प्रणाम,
ओ क्षण-भंगुर भव, राम-राम।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तजी की वैष्णवता पर युगधर्म की छाप है। इसीलिए उनकी कठिनता मे जीवन की स्फूर्ति, लोक-

हित के अभाव की पूर्ति और सुखद-जीवन स्थापित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

किसी देश का साहित्य वहाँ की जनता की संचित वृत्तियो का प्रतिबिम्ब हो‍ता है। जब साहित्य समाज का दर्पण है तो किस प्रकार कवि तत्कालीन परिस्थितियों, मूल प्रवृत्तियों एवं सिद्धान्तो से प्रभावित हुए विना रह सकता है। यह वादों का युग है। गांधी-वाद, समाजवाद, साम्यवाद और हिन्दू राष्ट्रवाद अनेकों वादों के वितण्डे इस समय चल रहे हैं। परन्तु उन सबमें गांधीवाद सर्वोपरि स्थान ग्रहण कर रहा है। गुप्तजी तो गाधी के शिष्यों में से हैं। अतः उनका अमिट प्रभाव उन पर पड़ना ही चाहिए।

गाँधी जी मनुष्यत्व को ही दैवत्य मानते थे। उनका विश्वास था कि अतुल त्याग के द्वारा ही मनुष्य देवता बन सकता है। यशोधरा मे सत्य, अहिसा, मानवतावाद, विश्व-कल्याण भावना, विश्व-बन्धुत्व, परहित, दया-क्षमा, आत्म-निग्रह, त्याग, तपस्या, संयम, सदाचार का वर्णन हमे इसी भावना के कारण मिलता है। उसमे वैयक्तिक-जीवन उन्नत करने, संसार में रहकर निष्काम कार्य करने, तृष्णा, कामना और मुक्ति भावना त्याग जीवन में अनुरक्त होने तथा काम, क्रोध- लोभ मोह से परे होकर जीवन-पथ पर अग्रसर रहने का उपदेश हमें मिलता है। विरक्ति की भावनाओं के प्रति विद्रोह नवीन युग की देन है, परन्तु आज का मनुष्य हमें कहता सुन पड़ता है—

'दुनियाँ का मजा ले लो दुनियाँ तुम्हारी है।'

इसी अनुरक्ति भावना की ध्वनि हमें यशोधरा में मिलती है। कामिनी और कांचन संसार मे दो बड़ी बाधाएँ हैं जो मनुष्य को उठने नही देती।

अपने युग के प्रतिनिधि कवि ने लोक-मान्य तिलक के कर्म-काण्ड का समर्थन कर पलायन-वादी मनोवृत्ति का कठोर विरोध किया है।

यशोधरा मे शुद्धोदन और यशोधरा-संवाद आधुनिकता के द्योतक है। बहू और श्वसुर की परस्पर वार्ता प्राचीनता के उपासक ठीक नहीं समझते, किन्तु अब इसमें दोष नही समझा जाता।

इस प्रकार यशोधरा मे सर्वत्र ही आधुनिकता छिटकी पड़ी है।

चरित्र-चित्रण

गुप्त जी ने यशोधरा मे नारी के आदर्श-चरित्र को अंकित करने का प्रयास किया है। अपनी कल्पना से उसे सुसज्जित कर उन्होने उसके चरित्र में अनेकों रंग भरे है। स्वाभिमान, त्याग, सन्तोष, सहनशीलत्व, श्रद्धा, वात्सल्य, पति-प्रेम आदि गुण उन्होंने बड़ी सफलता से अपने पात्रों मे दर्शाये है।

यशोधरा मे हमें मुख्यत: दो ही स्त्री पात्र प्राप्त होते है। महाप्रजावती और यशोधरा। कहीं-कही गोपा की सखियों की भी चर्चा काव्य मे हुई है, किन्तु उनका विकास नही पाया जाता। अब हम महाप्रजावती तथा यशोधरा के चरित्रो पर दृष्टि डालेंगे।

महाप्रजावती

महाप्रजावती, महाराज शुद्धोदन की पत्नी तथा सिद्धार्थ की विमाता है। प्राय: यह देखा जाता है कि विमाता अपनी सौत के पुत्र के प्रति द्वेष-दृष्टि से देखती है। गुप्त जी ने युगो से प्रचलित नारी-अभिशाप को धोने के लिये यशोधरा में महाप्रजावती के चरित्र का आदर्श तथा विस्तृत अंकन किया है। वह एक आदर्श माता है। मायादेवी के निधन के पश्चात् वह सिद्धार्थ को सगे पुत्र की तरह पालती है। उसके लिये उसका पुत्र नन्द और सौत का पुत्र सिद्धार्थ दोनो एक समान है। वह अपने दूध का महत्व भली-भाँति जानती है। जिस समय सिद्धार्थ ने अपना सर्वस्व छोड़कर

वन-गमन किया, उस समय महाप्रजावती दुख से कितनी पागल हो उठती है, उसका अनुमान उसके निम्न शब्दों से किया जा सकता है—

मैने दूध पिलाकर पाला ।
सोती छोड़ गया पर मुझको वह मेरा मतवाला ।
कहाँ न जाने वह भटकेगा,
किस झाडी मे जा अटकेगा ।
हाय ! उसे काँटा खटकेगा
वह है भोला भाला ।
मैने दूध पिलाकर पाला ।

वह अपने भाग्य को बुरा-भला कहने लग जाती है—

निकले भाग्य हमारे सूने,
वत्स, दे गया तू दुख दूने,
किया मुझे कैकेयी तूने,
हा, कलंक यह काला ।
मैने दूध पिलाकर पाला ।

वह पुत्र-वियोग सहन करने मे स्वयं ही असमर्थ पाती है—

कह, मै कैसे इसे सहूँगी ?
मर कर भी क्या बची रहूँगी ?
जीजी से क्या हाय ! कहूँगी ?
जीते जी यह ज्वाला ।
मैने दूध पिलाकर पाला ।

भारतीय वृद्धा माताएँ अपने पुत्र से कैसी-कैसी आशाएं करती है । देखिए इसका सजीव चित्रण—

जरा आ गई यह क्षण-भर में,
बैठी हूँ मै आज डगर मे !
लकड़ी तो ऐसे अवसर मे,

देता जा ओ लाला।
मैंने दूध पिला कर पाला!

इस प्रकार विमाता के चरित्र को गुप्त जी ने आदर्श-रूप प्रदान किया है। नारी का यह भी एक चरित्र अंग था, जिस पर वे 'साकेत' में पूरी तरह से प्रकाश न डाल पाये थे। ऐसा भासित होता है कि उसी अभाव की पूर्ति गुप्तजी ने महाप्रजावती के चरित्र द्वारा की है।

पत्नी यशोधरा

गुप्तजी ने यशोधरा के माता एवं पत्नी के दो ही रूपों को मुखरित किया है। वह मानिनी नायिका है। उसमें आत्म-सम्मान की भावना चरमसीमा को प्राप्त हुई है। उसका कथन है कि—

सिद्धि—हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात;
पर चोर, चोरी गये—यही बड़ा व्याघात॥

सखि, वे मुझसे कहकर जाते।
कह, तो क्या मुझको वे अपनी पथ-बाधा ही पाते?

यह ठीक है कि—

मुझको बहुत उन्होंने माना,
फिर भी क्या पूरा पहिचाना?
मैंने मुख्य उसी को जाना,
जो वे मन में लाते।
सखि, वे मुझसे कहकर जाते।

जब—

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,

हमी भेज देती हैं रण में,
क्षात्र - धर्म के नाते,
सखि, वे मुझसे कह कर जाते।

तो यह शंका करना कि मै उनके महाभिनिष्क्रमण के समय बाधा रूप में आती, मूर्खता है।

यशोधरा साध्वी एवं पति-भक्ता नारी है। इसी से वह वर्तमान कष्टों को चुनौती देती हुई कहती है—

यदि मैं पतिव्रता, तो,
तो मुझको कौन भार-भय भारी।

वह सिद्धार्थ को सन्तुष्ट करने के प्रयत्न मे सदा संलग्न रहती है। उसने स्वयं को उसमे आत्मसात कर दिया था। जो वह कहते थे, यशोधरा वही करती थी, किन्तु उनके द्वारा अनायास त्यागे जाने पर वह स्तम्भित रह गई। उसे आश्चर्य हुआ कि यह सब हुआ ही क्यो? उसने सोचा, सम्भवत: वे मुझे वासना की खान समझ कर त्याग गये हो। वह कहती है—

अयि मेरे अर्धांगि-भाव,
क्या विषय-मात्र थे तेरे
हा! अपने अंचल मे किसने
ये अंगार बिखेरे?

यशोधरा सिद्धार्थ को सम्बोधित कर पुन: कहती है कि हे प्रभु! कभी तुमने यह भी सोचा कि जिस वस्तु से तुम्हे घृणा थी, और यदि वह घृणित वस्तु मेरे पास थी, तो वह भी ईश्वरीय देन थी। अत: फिर क्या मुझे इस प्रकार सुप्तावस्था मे छोड़कर चला जाना उचित था? क्या हे देव, क्या तुमने कभी इस बात पर भी विचार किया कि तुम्हारे इस प्रकार गृह-त्याग करने पर सास-ससुर मेरे सम्बन्ध मे कैसी भावनाएँ बना लेगी? खैर, न सोचो तो न सही, तुम्हारी अनुपस्थिति मे अब तुमसे क्या कहूँ? मुझ पर जो भी बीतेगा वह—

मौन रहूँगी सहूँगी मैं।

किन्तु फिर भी एक बात अवश्य कहे देती हूँ कि—

बिदा न लेकर स्वागत से भी वंचित यहाँ किया है;
हंत! अन्त में यह अभिनय भी तुमने मुझे दिया है॥

वह तो विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उनको बिदा देकर एक आदर्श उपस्थित करना चाहती थी, परन्तु दुर्भाग्य ने यह शुभावसर न आने दिया। यदि—

देती उन्हें बिदा मैं गाकर,
भार झेलती गौरव पाकर,
यह निःश्वास न उठता हा कर!
बनता मेरा राग न रोग!
मिला न हा! इतना भी योग।

यदि उसे यह योग भी मिल गया होता—

मैं हँस लेती तुझे वियोग!

यदि उनको 'पहुँचाती मैं सजाकर' तो वियोग सरल हो गया होता, किन्तु वह गया, 'वह गए स्वयं मुझे लजाकर। फिर भी—

लूँगी कैसे? वाद्य बजाकर
लेंगे जब उनको सब लोग।

जिस समय राज्य-परिवार के सब लोग सिद्धार्थ के कपिल-वस्तु में पधारने पर स्वागत के हेतु जाने को उद्यत हुए, उस समय जब शुद्धोदन कहते हैं—

अब क्यों विलम्ब किया जाये बेटी,
शीघ्र तू प्रस्तुत हो।

वह मानिनी स्पष्ट उत्तर देती है—

किन्तु तात! उनका निर्देश बिना पाये मैं,
यह घर छोड़ कहाँ और कैसे जाऊँगी?

इस उत्तर से महाप्रजावती आग-बबूला होकर कहती है—

गोपे, हम अबला जनो के लिए इतना
तेज-नही, दर्प-नही, साहस क्या ठीक है ?

जब वह गोपा से सिद्धार्थ से मिलने मे बाधा पूछती है, तो उसका नारीत्व जागृति हो उठता और वह उत्तेजित हो कह उठती है—

बाधा तो यही है, मुझे बाधा नही कोई भी।
विघ्न भी यही है, जहॉ जाने से जगत मे
कोईमुझे रोक नही सकता है धर्म से,
फिर भी जहाँ मै, आप इच्छा रहते हुए
जाने नही पाती! यदि पाती तो कभी यहॉ
बैठी रहती मै? छान डालती धरित्री को
सिंघनी सी काननो मे, योगिनी-सी शैलों मे,
शफरी-सी जल मे, विहंगिनी-सी व्योम मे,
जाती तभी और उन्हे खोज कर लाती मै!
मेरा सुधा-सिन्धु मेरे सामने ही आज तो
लहरा रहा है, किन्तु पार पर मै पडी
प्यासी मरती हूॅ, हाय! इतना अभाग्य भी
भव में किसी का हुआ? कोई कही ज्ञाता है
तो मुझे बता दे हा! बता दे हा।

इतना कहकर यशोधरा मूर्च्छित हो जाती है। शुद्धोदन भी उसके मान को भंग नही करना चाहते है। वे स्पष्ट कहते है कि—

बेटी, उठ मै भी तुझे छोड नही जाऊॅगा।
तेरे अश्रु लेकर ही मुक्ति-मुक्ता छोड़ूॅगा
तेरे अर्थ ही तो मुझे उसकी अपेक्षा है!
गोपा-बिना गौतम भी ग्राह्य नही मुझको!
जाओ, अरे कोई उस निर्मम से यों कहो—

झूठे सब नाते सही तू तो जीव मात्र का,
जीव-दया-भाव से ही हमको उबार जा।

कितनी दया, कितनी ममता, कितना क्रोध एवं उलहना इन पंक्तियो मे निहित है। गोपा ने अपनी टेक रखी और स्वय अमिताभ को आना ही पड़ा। बालक राहुल बुद्धदेव को आता देख माता के मान की ओर संकेत कर कहता है—

अम्ब आ रहे है ये तात,
शान्त हो अब सारे उत्पात।
ले, आ अब तो रह गई 'गर्विणी गोपा' की लाज,
जितना रोना हो रो ले इनके आगे आज।

बालक बड़े समझदार होते है। वह बहुत शीघ्र ही मानव की मनोवृत्तियो का विश्लेषण कर लेते है और तत्व तक पहुँच जाते है। फिर यशोधरा की मानिनी वृत्ति को वह क्यो न परख लेता? जो उसके जीवन के अंग-प्रत्याग मे व्याप्त थी।

अन्त मे भगवान् बुद्ध स्वयं दर्शन देते हुए कहते है—

मानिनि मान तजो, लो रही तुम्हारी बान,
दानिनि आया स्वय द्वार पर यह तव-तत्रभवान।
सिद्धार्थ-शाक्य की निर्दयता प्रिय जान,
मैत्री-करुणा-पूर्ण आज वह शुद्ध बुद्ध भगवान।

अनुरागिनी गोपा कृत-कृत्य हो कहती है—

यशोधरा क्या कहे और अब, रहो कही भी छाय।

इस प्रकार गोपा ने सिद्ध कर दिया कि यदि बुद्धजी कहकर जाते तो वह उनके मार्ग मे बाधा बन कर कभी न उपस्थित होती। क्योंकि एक आदर्श पत्नी के समान 'मैने मुख्य उसी को माना, जो वे मन में लाते।' फिर वह उनकी इच्छाओं के विरुद्ध एक बात भी न कहती, वरन् उनकी प्रत्येक आज्ञा के पालन में तत्पर रहती। यही कारण था कि जब शुद्धोदन ने गुप्तचरो को सिद्धार्थ की खोज

के निमित्त भेजने का प्रस्ताव किया तो वह स्पष्ट मना कर, कहती है कि—

उनकी सफलता मनाओ तात, मन से,
सिद्धि-लाभ करके शीघ्र लौटे वे वन से।

यशोधरा ने वास्तव मे बुद्धदेव को आत्म-समर्पण कर, उनके दुख मे दुख और उनके सुख मे सुख समझने की बान डाल ली थी। वह कहती है—

जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम, मुझ मे मेरा पानी;
चेरी ही मै बहुत तुम्हारी मुक्ति तुम्हारी रानी।
प्रिय तुम तपो, सहूँ, मे भरसक देखूँ, बस हे दानी,
कहाँ तुम्हारी गुण-गाथा मे मेरी करुण कहानी?

यशोधरा निरन्तर ही बुद्धजी की स्मृति मे छटपटाती और सोचती है कि जब वे आऍगे, तो यह उलहना दूँगी, वह बात कहूँगी तथा इस प्रकार मान करूँगी किन्तु अन्त मे उसकी ये समस्त भावनाऍ विस्मृति के अंक में बैठ जाती है। वह कहती है—

मेरे स्वप्न आज ये जागे,
अब वे उपालम्भ क्यो भागे?
पाकर भी अपना धन आगे,
भूली—सी मै भान,
पधारो, भव भव के भगवान।

अन्त मे विनम्रताकी मूर्ति बन कर वह कहती है—

नाथ, विजय है यही तुम्हारी,
दिया तुच्छ को गौरव भारी,
अपनायी मुझ—सी लघु नारी,
होकर महा महान।

भला जो नारी—

'स्वामी के सद्भाव फैल कर फूल फूल में फूटे।'

की भावना रखती हो वह विनय, विनम्रता शान्ति, सन्तोष एवं शिष्टाचार की साक्षात् प्रतिमूर्ति ही होगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि यशोधरा और सिद्धार्थ दोनों एक दूसरे को समानाधिकारी समझते थे। छोटे बड़े और नीच का प्रश्न न था। दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिये थे। यही कारण है कि पुनर्मिलन पर दोनों एक दूसरे से क्षमा याचना करते है। प्रेमाधिक्य से एक दूसरे को बुरा-भला नहीं कहते।

माता यशोधरा

यशोधरा आदर्श जननी थी और राहुल पर अभिमान रखती थी। दुःख के एकाकी इस साथी के लिए वह जो न कहे वह थोड़ा है। यथा—

मेरी मलिन गुदडी मे है राहुल—सा लाल ?
क्या है अंजन-अंगूराग, जब मिली विभूति विशाल ?

वह परमात्मा से प्रार्थना करती है—

देव बनाए रखे !
राहुल, बेटा, विचित्र तेरी क्रीडा !
तनिक बहल जाती है,
उसमें मेरी अधीर पीडा ब्रीड़ा।

उसकी कामना है कि—

मेरा शिशु-संसार वह, दूध पिये, परिपुष्ट हो,
पानी के ही पात्र तुम, प्रभु रुष्ट या तुष्ट हो।

माता अपने बालक को हँसते देखना चाहती है। अतः यशोधरा भी इच्छा करती है और कहती है—

बेटा, मै तो हूँ रोने को,
तेरे सारे मल धोने को,
हँस तू, है सब कुछ होने को।

यशोधरा अपना मन बहलाने एवं बालक को प्रसन्न करने के लिए भरसक प्रयास करती है। कभी-कभी वह उसके साथ खिलवाड़ करती है—

कैसे धाऊँ पाऊँ, तुझको हार गई मै दैया।

यशोधरा बालक राहुल की जिज्ञासाओ को शांत करने के लिए कभी कहानी कहती है, कभी सात्विक उपदेश देकर भावनाएँ शांत करती है तो कभी राहुल को शिष्टता, विनम्रता तथा सदाचार का पाठ पढ़ाने मे प्रयत्नशील दीख पड़ती है,। एक दिन बालक माता को निरंतर दुखी देखकर पिता के प्रति क्रोध प्रदर्शित करते हुए कहने लगा——

अम्ब, पिता आयेंगे तो उनसे न बोलूँगा।
और संग उनके न खेलूँगा, न डोलूँगा।

जब यशोधरा पूछती है—

बेटा क्यो ?

तो वह कहता है—

गये वे अम्ब, क्यों कुछ विना कहे ?
हम सबने ये दुख जिससे यहाँ सहे।

इस भय से कही राहुल अविनय न कर बैठे, यशोधरा कहती है—

अविनय होगा किन्तु बेटा, क्या न इससे ?

वह निरंतर पुत्र को अच्छी बातों के प्रति प्रोत्साहित करती है—

"बेटा, पुरुषो के लिए स्वावलम्वी होना उचित है। दूसरों का भार बनना अपने पौरुष का अनादर करना है। यूँ तो सबका भार भगवान् पर है, परंतु मेरे लिये तो स्वामी ही भगवान् है और तेरे लिए गुरुजन ही।"

यशोधरा मे कवि ने आदर्श नारी के वांछनीय गुणों का सुन्दर वर्णन कर आधुनिक अर्थ वादी वासना से पराभूत नारी को सुन्दर उपदेश दिया है और उसे कर्म-काण्ड मे प्रवृत्ति रहने का भी उपदेश किया है। अत: स्वीकार करना पडता है कि यशोधरा का चरित्र एक अमर चरित्र है। क्योकि वह नारी-मात्र के भावों का प्रतीक है। विरह तथा निराशा मे भी वह अपना कर्तव्य नहीं भूलती। राहुल का भार उस पर है, किन्तु राहुल को सदा हँसा कर वह स्वयं भी प्रसन्न रहती है। यशोधरा अपने विश्वासों के प्रति अडिग है। वह मूर्ख नहीं। ज्ञान चक्षु उसके भी हैं। इसलिए व्यक्तिगत दु:ख मे वह जगत का सुख अनुभव करती है। अन्त मे स्वयं भी जन-हित की भावना से प्रेरित होकर संघ की शरण में चली जाती है।

राहुल

राहुल एक वर्ष के लगभग था, जब सिद्धार्थ ने घर छोड़कर वन-गमन किया था। राहुल के दर्शन सबसे पहले हमें उस रूप में होते हैं जब यशोधरा कहती है—

> चुप रह, चुप रह, हाय अभागे।
> रोता है, अब किसके आगे?
> तुझे देख पाते वे रोता,
> मुझे क्यों छोड़ जाते सोता?
> अब क्या होगा? तब कुछ होता।

इसके पश्चात् वह विकास पाता है। माता सदा देवी-देवताओं की मनौती करती है और कहती है कि मै यह सारा दुख तेरी ही ओट मे सहन कर रही हूँ। यथा—

> दैव बनाए रखे
> राहुल, बेटा, विचित्र तेरी क्रीड़ा,

तनिक बहल जाती है
उसमे मेरी अधीर पीड़ा-व्रीडा ।

गुप्तजी ने यहाँ अलक्षित रूप से संकेत किया है कि यशोधरा की आगे चलने वाली सम्पूर्ण कथा राहुल के आधार पर ही अवलम्बित है। अन्यथा सम्भव था कि यशोधरा बुद्ध जी के आगमन से पूर्व ही राम-शरण हो जाती।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् वाली कथा की धुरी बालक राहुल ही है। इस बात को यशोधरा ने स्वयं स्वीकार किया है—

ओ, मेरे अवलम्ब, बता क्यों 'अम्ब-अम्ब' कहता है ?

वह फिर कहती है—

किलक अरे, मै नेक निहारूँ,
इन दातो पर मोती वारूँ ।

धीरे-धीरे वह बोलने लग जाता है। एक दिन अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह कहने लगता है—

"ओ माँ, आँगन मे फिरता था
कोई मेरे संग लगा ।
आया ज्यो ही मै अलिन्द मे
छिपा न जाने कहाँ भगा

माता समझ गई कि शिशु भयभीत हो गया और कहने लगी—

बेटा, भीत न होना, वह था
तेरा ही प्रतिबिम्ब जगा ।

धीरे-धीरे बालक बडा होने लगा और माता के साथ खिलवाड़ करने लगा। माता भी शिशु को प्रसन्न करने के लिए खेलती और हार मान लेती है—

ठहर, बाल-गोपाल कन्हैया,
राहुल, राजा भैया ।

कैसे धाऊँ, पाऊँ तुझको हार गई मै दैया,
सद्‌ दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध फेन-सी शैय्या,

अब राहुल काफी चैतन्य हो गया और माता का दुखी हृदय अपनी विनोद-मयी बातो एवं प्रश्नो से बहलाये रहता है। एक बार बालक राहुल प्रश्न करता है—

"अम्ब, तात कब आयेगे ?"

माता उत्तर देती है—

"धीरज धर बेटा, अवश्य हम उन्हें एक दिन पायेगे,
मुझे भले ही भूल जायँ वे तुझे क्यो न अपनायेगे;
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायेंगे।

राहुल फिर प्रश्न करता है—

माँ तब पिता-पुत्र हम दोनो संग संग जायेंगे।
देना तू पाथेय, प्रेम से विचर-विचर कर खायेंगे ?
पर अपने दूने-सूने दिन तुझको कैसे भायेंगे ?"

इस कल्पना पर यशोधरा चकित हो उठती है और विकलता से पूछती है—

हा राहुल ! क्या वैसे दिन भी इस धरती पर धायेंगे।

कितनी विकलता एवं भय मातृ-हृदय का इसमे निहित है। माता कहती है—

देखूँगी बेटा, मै, जो भी भाग्य मुझे दिखलायेंगे,
तो भी तेरे सुःख के ऊपर मेरे दुख न छायेंगे।

अन्तिम पंक्ति मे यशोधरा का हृदय खुला रखा है। जब वह पति के मार्ग की ही बाधा न बनी, तो बालक के सुख मे रोड़ा कैसे बन सकती है ? भारतीय नारी के इस महान् त्याग की गाथा कविवर गुप्तजी ने यशोधरा मे मुखरित की है।

अब बालक राहुल समझदार हुआ। खिलवाड़ का समय बीत गया। उसे शिक्षा देने का समय आ गया। माता ने अपना उत्तर-

दायित्व समझा। क्यों न समझती? पिता तो घर थे ही नहीं, जो उचित व्यवस्था करते। अतः वह स्वयं उसे यथावसर दीक्षा देने लगी। एक बार बातों-बातों में ही बालक राहुल पूछ बैठा कि हे माँ, जब जगत्प्राण-वायु सर्व-व्यापक है तो—

क्यो अपनी बात वह ले जाता वहाँ नही?

यशोधरा प्रश्न का समाधान करती है—

निज-ध्वनि फैल कर लीन होती है यही।

राहुल पुन. पूछता है—

और उनकी भी वही? फिर क्या बडाई है?

यशोधरा सकपकाकर उत्तर देती है—

सबने शरीर शक्ति मित की ही पाई है,।
मन ही के माप से मनुष्य बडा-छोटा है,
साधन के कारण ही तन की महत्ता है,
किन्तु शुद्ध मन की निरुद्ध कहाँ सत्ता है?
करते हैं साधन विजन मे वे तन से,
किन्तु सिद्धि—लाभ होगा मन से, मनन से।
देख निज, नेत्र—कर्ण जा पाते नही वहाँ,
सूक्ष्म मन किन्तु दौड जाता है कहाँ-कहाँ?
वत्स यही मन जब निश्चलता पाता है,
आकर इसी मे तब सत्य समा जाता है।

किन्तु राहुल फिर प्रश्न करने लगता है—

तो मन ही मुख्य है माँ?

यशोधरा कहती है—

बेटा, स्वस्थ्य देह भी।

इस प्रकार हम देखते है कि राहुल की प्रज्ञा-शक्ति बडी तार्किक एवं गम्भीर है।

बालक की कल्पना शक्ति मे संबल आया और वह कल्पना करने

लगा कि यदि पक्षी के समान पर लगा कर उड़ सकूँ तो झट से पिता जी को बुला लाऊँ। इस प्रकार माता, बाबा और दादी तथा परिवार के उस कष्ट का निवारण कर दूँ, जो पिता जी की अनुपस्थिति से सबको हो रहा है। अनायास उसे हनुमानजी का स्मरण हो आता है कि वह तो बिना पंखों के ही उड़े थे। अतः अपनी माँ से पूछने लगा—

क्योंकर उड़े वे भला ?

ओहो ! हनुमान उडे जैसे माँ ?

माता उत्तर देती है—

बेटा, योग बल से।

राहुल फिर कह उठता है—

मै भी योग-साधन करूँगा अम्ब, कल से।

कभी-कभी वह बालकों के समान आग्रह करता है—

माँ कह एक कहानी।

राहुल बड़ा तार्किक बालक है। कभी-कभी वह दार्शनिकता की बातें करने लगता है। एक बार वह कहता है—

"माँ, मै तो एक-दो बार सुनकर ही कोई बात नही भूलता। चाहे तू मेरी परीक्षा ले ले।"

यशोधरा कहती है—

"तेरे पूर्वजन्म के संस्कार है। तू उस जन्म मे पंडित रहा होगा। इसी लिये इस जन्म मे तुझे सहज ही विद्या प्राप्त हो रही है।"

तब राहुल बड़े आश्चर्य से कहता है—

"ऐसी बात है"

यशोधरा उत्तर देती है—

"हाँ बेटा, इस जन्म के अच्छे कर्म उस जन्म मे साथ देते है।"

राहुल दूसरा प्रश्न पूछता है—

और बुरे ?

माता प्रश्न का समाधान करती हुई कहती है,

"वे भी"

इसके पश्चात् राहुल कितनी मार्मिकता से अन्य प्रश्न उसके सम्मुख रख कर कहता है—

"तो एक बार बुरे कर्म करने से उनसे पिंड छूटना कठिन है?"

यशोधरा 'यही बात है' कहकर बेटे की शंका दूर करती है।

इस पर राहुल कितनी गम्भीरता से मनन कर कहता है—

"तो मै आचार्य-देव से कहकर बुरे कर्मों की एक सूची बनवा लूँगा, जिससे उनसे बचता रहूँ।"

इस कथन पर माता अपना मत देती है—

"अच्छा तो यह होगा कि तू अच्छे कर्मों की भी एक सूची बनवा ले।"

माता के कथन से सहमत न होकर राहुल कहता है—

"अच्छी बातें तो वे पढ़ाते ही है।"

माता फिर उपदेश करती है—

"तो उन्हीं को स्मरण रखना चाहिए। बुरी बातों का स्मरण भी बुरा।"

इस उपदेश को सुनकर राहुल बड़ी गम्भीरता से कहता है—

"तो एक ओर मुझे अज्ञ भी बनना पड़ेगा। वैसे आज असमर्थ बनना पड़ा है।"

यशोधरा प्रश्न करती है—

'कैसे?'

राहुल उत्तर देता है—

"आज व्यायाम-शाला में कूदने के लिए बढाकर एक नई सीमा निर्धारित की गई। मेरे साथियों में से कोई भी वहाँ तक नहीं उड सका। मैं कूद सकता था, परन्तु सबका मन रखने के लिए समर्थ होते हुए भी मैं वहाँ तक नहीं गया। कल ही मैंने पढा था—

'आत्मना प्रतिकूलानि न समचरेतु' ।"

अतः उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राहुल बुद्धिमान्, धर्मवान् एवं गम्भीर बालक है ।

गुप्तजी ने यशोधरा मे नन्द, सिद्धार्थ एवं शुद्धोदन के चरित्रो पर कुछ ऐसा प्रकाश डाला है जिसके कारण हमें उन पर गम्भीरता-पूर्वक एक दृष्टि डालना आवश्यक है । अब क्रमशः प्रत्येक के चरित्र को देखिए ।

नन्द

नन्द का चरित्र-विकास केवल नाम मात्र को ही हुआ है । वह सिद्धार्थ का सौतेला भाई है । सिद्धार्थ के पश्चात् राज्याधिकारी वही है । नन्द के चरित्र से ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने चिरकाल से प्रचलित अधिकार के प्रश्न पर भाई-भाई मे होने वाले झगड़ो को शान्त कराने के लिए उनके चरित्र की सृष्टि की है या यू कहिए कि कवि 'भरत सम भाई' का आदर्श नन्द मे देखना चाहता है। सिद्धार्थ के वन चले जाने पर नन्द सोचते है—

> आर्य, यह मुझ पर अत्याचार !
> राज्य तुम्हारा प्राप्य, मुझे ही था तप का अधिकार !
> छोड़ा मेरे लिए हाय ! यह तुमने आज उदार ?
> कैसे भार सहेगा सम्प्रति राहुल है सुकुमार ?
> आर्य, यह मुझ पर अत्याचार !

और इसके पश्चात् वह उनकी 'थाती' राहुल पर ही सब कुछ निछावर कर देने का विचार करता है ।

सिद्धार्थ

यशोधरा में सिद्धार्थ का चरित्र पुरुष-पात्रो मे प्रधान है, परन्तु कवि ने उसका भी कोई विशेष विकास नही दिखाया है। केवल विरक्त भावना तथा ज्ञान प्राप्ति ही चित्रित करके उनके चरित्र को समाप्त कर दिया है। कही-कही बीच मे यशोधरा आदि के कथन उनके चरित्र के कुछ बिखरे कण दीख जाते है।

महाप्रजावती के शब्दो से ज्ञात होता है कि मायादेवी के अवसान के पश्चात् उसने ही सिद्धार्थ का लालन-पालन किया। विमाता के दूध से पोषित होने पर सिद्धार्थ पर दूध का यह ऋण चढ गया। शस्त्र और शास्त्र की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उनका विवाह गोपा से सम्पन्न हुआ। उनके उस समय के चरित्र पर गोपा की निम्न पंक्तियाँ प्रकाश डालती है—

देख कराल काल-सा जिसको कॉप उठे सब भय से।
गिरे प्रतिद्वन्द्वी नन्दार्जुन, नागदत्त जिस हय से।
वह तुरंग पालित—कुरंग-सा नत हो गया विनय से,
क्यो न गूँजती रंगभूमि फिर उनके जय जय जय से?
निकला वहाँ कौन उन-जैसा प्रबल पराक्रम कारी?

× × ×

सभी सुन्दरी बालाओ मे मुझे उन्हो ने माना।
सबने मेरा भाग्य सराहा, सबने रूप बखाना।
खेद, किसी ने उन्हे न फिर भी ठीक ठीक पहचाना।

× × ×

सिद्धार्थ अपनी युवावस्था मे बड़े पराक्रमी तथा वीर जान पडते है। यशोधरा-सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, शस्त्र-परीक्षा मे सफलता प्राप्त कर, वे उसे अपनी पत्नी-रूप मे स्वीकार करते हैं।

यह विलास-मयी जीवन उनके साथ अधिक समय तक नही

व्यतीत हो पाता। विरक्ति की भावना, जो कि उनके हृदय के कोने-कोने में सुप्तावस्था में पड़ी थी, फिर से शनैः शनैः जागरुक होती है। यशोधरा पूछती है—

'क्यों जी, प्राण-वल्लभ कहूँ या तुम्हें स्वामी मैं?' तो वे हँसकर उत्तर देते हैं—

'योगेश्वर क्यों न होऊँ, गोपेश्वर नामी मैं!'

इन पंक्तियों का प्रसंग यद्यपि पति-पत्नी के व्यंग-विनोद से है, किन्तु उस समय इसका वास्तविक रहस्य प्रकट होता है, जब वे यह सोचते दृष्टिगोचर होते हैं—

देखी मैंने आज जरा।
हो जावेगी क्या ऐसी ही मेरी यशोधरा?
हाय! मिलेगा मिट्टी में वह वर्ण-सुवर्ण खरा!
सूख जायेगा मेरा उपवन, जो है आज हरा?
सौ-सौ रोग खड़े हो सम्मुख, पशु ज्यों बाँध परा,
धिक्! जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा!
रिक्त-मात्र है क्या सब भीतर बाहर भरा-भरा?
कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैंने न तरा?

और फिर उनके हृदय में विरक्ति की प्रबल लहरें उठती हैं—

मरने को जग जीता है।
रिसता है जो रन्ध्र-पूर्ण घट,
भरा हुआ भी रीता है।
यह भी पता नहीं, कब किसका
समय कहाँ आ बीता है?
विष का ही परिणाम निकलता,
कोई रस क्या पीता है?
कहाँ चला जाता है चेतन,
जो मेरा मनचीता है।

खोजूँगा मैं उसको, जिसके;
विना यहाँ सब तीता है।

आधी रात के समय, एक दिन संन्यासी वनने की इच्छा से वशीभूत होकर सिद्धार्थ कन्थक नामक अश्व पर सवार होकर, छन्दक के साथ वन को ओर यह कहते हुए प्रस्थान करते है—

रख अब अपना यह स्वप्न-जाल,
निष्फल मेरे ऊपर न डाल।
मैं जागरूक हूँ, ले सँभाल—
निज राज-पाट, धन, धरिणि, धाम।
ओ क्षण-भंगुर भव, राम राम।

सिद्धार्थ को चिन्ता होती है, कहीं कोई यह न समझे कि वे गृहस्थी का भार देखकर भाग रहे हैं, इस लिए वे कहते है—

क्या भाग रहा हूँ भार देख ?
तू मेरी ओर निहार देख!
मैं त्याग चला निस्सार देख ?
अटकेगा मेरा कौन काम ?
ओ क्षण-भंगुर भव राम राम !

उनका वन की ओर प्रस्थान करना माता-पिता को ही नहीं, प्रजाजनों की भी शीक्षता है। प्रजा का इस प्रकार अपने राजकुमार के लिए व्याकुल होना, सिद्धार्थ के आदर्श चरित्र कर परिचायक है। प्रजा-जन उसके लिए व्याकुल होकर कह उठते है—

गए आज सिद्धार्थ हमारे,
जो थे इन प्राणों के प्यारे,
भार मात्र कोई अब धारे,
राज्य धूलि में लोटा।
भाई रे! हम प्रजाजनो का हाय! भाग्य ही खोटा।

छन्दक लौट कर उनके सन्यास-ग्रहण कर लेने की सूचना देता है—

हाय ! काट डाले वे केश !

चिकने, चुपड़े, कोमल कच्चे, सच्चे सुरभि-निवेश।

छन्दक से उन्होंने आशा का सन्देश भी भेजा है—

करे न कोई मेरी चिन्ता नही मुझे भय-लेश।

सिद्धि-लाभ करके मै फिर भी लौटूँगा निज देश।

सह सकता मै नहीं किसी का जन्म-जन्म का क्लेश।

तुम अपने हो जीव मात्र का हित मेरा उद्देश।

अन्त मे उनका यह सन्देश सफल होता है। तप भंग करने के लिए अप्सराएँ उपस्थित होती है, पर वे निश्चित भाव से ध्यान-मग्न रहकर सिद्धि-लाभ करते है और जन-कल्याणार्थ के उपदेश देते हुए निज देश को लौटते है। जब राहुल पूछता है कि हे पिता ! तुम्हे तो सिद्धि मिल गई, परन्तु इसे यशोधरा को क्या लाभ हुआ, तो वे उत्तर देते है—

वत्स ! इष्ट क्या और इसे अब, आया जब अमिताभ ?

प्रथम ही पाया तुझसा जात !

शान्त हो अब सारे उत्पात।

वचनानुसार यशोधरा के द्वार पर सिद्धार्थ लौट कर आते है, परन्तु अब वे गौतम न होकर भगवान् बुद्ध है। यशोधरा के ही नहीं अब वे सब के हो गए है। वे सबकी भिक्षा स्वीकार करते हुए यशोधरा के समीप आते है और सबकी भिक्षा स्वीकार करना यशोधरा अनुचित समझती है, तब वे उसे समझाते है—

दानिनि, आया स्वयं द्वार पर यह तब-तत्र भवान।

किसकी भिक्षा न लूँ, कहो मै ? मुझको सभी समान।

अपनाने के योग्य वही तो जो है आर्त्त-अजान।

अन्त मे सिद्धार्थ का चरित्र इतने उच्च-स्तर पर चढ़ जाता है कि वे सिद्धार्थ से भगवान् बुद्ध बनकर यशोधरा और राहुल को भी संघ की शरण मे ले लेते है। यथा—

बुद्धं शरणं धर्मं शरणं,
संघं शरणम् गच्छामिऽ ॥

शुद्धोदन

महाराज शुद्धोदन कपिलवस्तु के राजा हैं, सिद्धार्थ के पिता हैं। पुत्र-वियोग से व्यथित वे हमारे सामने आते हैं। उन्होंने सिद्धार्थ को सासारिक बन्धनों मे फॉसने का भरसक प्रयास किया, किन्तु वह सब निष्फल रहा। सिद्धार्थ के वन चले जाने पर वे दुखित होकर कहते है—

मैंने उसके अर्थ यह, रूपक रचा विशाल,
किन्तु भरी खाली गई, उलट गया वह ताल।
चला गया रे, चला गया!
छला न जाय हाय! वह यह मै।
छला गया रे छला गया।
चला गया रे चला गया ॥

उन्होने सिद्धार्थ को बडे लाड़-दुलार से पाला, किन्तु वे उसका ध्यान न कर चले गए। पुत्र-वियोग विष-फल के समान उन्हे प्रतीत होता है। पिता के लिए पुत्र के समान कोई धन नही। वे कहते हैं—

"धिक् सब राज-पाट, धन-धाम"

दु:ख की तीव्र पीड़ा उनके धैर्य को नष्ट कर देती है। वे पुरुष होकर भी यशोधरा से धैर्य धरने का साधन पूछते हैं। यथा—

धीरा है यशोधरे, तू, धैर्य कैसे मै धरूँ?
तू ही बता, उसके लिए, मै आज क्या करूँ?
× × ×
तू क्या कहती है बहू, पाऊँ मै जहॉ कही,
चतुर चरों को भेज, खोजूँ भी उसे नही?

यशोधरा अत्यन्त साहस-पूर्वक कहती है --

तात, नही !

खोज करना उन्ही के प्रतिकूल है।
तात, सोचो, क्या गए वे इसी अर्थ है ?
खोज हम लावे उन्हे, क्या वे असमर्थ है ?

किन्तु शुद्धोदन अधीर होकर वृद्ध-सुलभ भावना से कहते है। यथा—

बेटी, वह प्रौढ है क्या ?
वत्स भोला-भाला है।

फिर स्वयं सीधे बनकर कह उठते है—

मै हूँ पिता,
चिन्ता मुझे पुत्र की प्रगति की।
भूला वह भोला,
उठा रक्खूँ क्या उपाय मै ?

पुत्र-वियोग से व्यथित शुद्धोदन को जब सिद्धार्थ के सिद्धि-लाभ कर चुकने का समाचार मिलता है तो वे गोपा यशोधरा के भाग्य की सराहना करते है और स्वयं अपने पुत्र के स्वागत के लिए मगध देश जाना चाहते है।

वास्तव मे पिता का वह हृदय धन्य है, जो अपने पुत्र के लिए इतना व्यथित होता है।

यशोधरा में अन्तर्द्वन्द्व

यशोधरा-काव्य की रचना गुप्त जी ने मनोवैज्ञानिक पृष्ठ-भूमि पर की है। एक-एक पात्र सम्मुख आता है और अपने अन्तर्द्वन्द्व के गीतो मे अभिव्यक्ति करके चला जाता है। पात्रों के अन्तर्द्वन्दो से ही कथा की धारा प्रवाहित होती है। सबसे पहले सिद्धार्थ हमारे

सम्मुख आते है। उनके मानस में संसार की अनित्यता का द्वन्द्व चल रहा है। वे सोच रहे है—

घूम रहा है कैसा चक्र।
वह नवनीत कहाँ जाता है,
रह जाता है तक्र।
पिसो, पड़े हो इसमे जब तक,
क्या अन्तर आया है अब तक,
सहे अन्ततोगत्वा कब तक—
हम इसकी गति बक्र?
घूम रहा है कैसा चक्र।

जीवन के विषय मे वे सोचते है—

मरने को जग जीता है!
रिसता है जो रन्ध्र-पूर्ण-घट
भरा हुआ भी रीता है।
यह भी पता नही, कब किसका
समय कहाँ आ बीता है?

फिर उनके हृदय मे भावनाएँ उठती है—

विष का ही परिणाम निकलता,
कोई रस क्या पीता है?

इस अन्तर्द्वन्द्व मे सिद्धार्थ का मन चेतन का रहस्य जानने के लिए उत्सुक हो रहा है। वे विचार करते है—

कहाँ चला जाता है चेतन,
जो मेरा मन चीता है?

इसके पश्चात् वे अपने मन मे ठान लेते हैं—

खोजूँगा मै उसको, जिसके,
विना यहाँ सब तीता है।

सिद्धार्थ अन्तर्द्वन्द्व मे इतने ऊँचे उठ जाते है कि भव-मुक्त को

ठुकरा कर, मुक्ति-मार्ग की खोज के निमित्त वह वन की ओर प्रस्थान करते है।

इसके पश्चात् यशोधरा हमारे सम्मुख आती है। उसके मन मे भी भारी द्वन्द्व हमे मिलता है। वास्तव मे सम्पूर्ण काव्य यशोधरा के अन्तर्द्वन्द्व से ही परिपूर्ण है। कवि ने महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् कुछ गिने चुने गीतो में नन्द, महाप्रजावती, शुद्धोदन, पुर-जन तथा छन्दक आदि का अन्तर्द्वन्द्व चित्रण किया है। उसके पश्चात् यशोधरा के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हमे 'यशोधरा और राहुल जननी' शीर्षक गीतो से प्राप्त होता है।

यशोधरा बड़ी विकलता के साथ वियोग को कोसती है—

मिला न हा ! इतना भी योग,
मै हँस लेती तुझे वियोग।
देती उन्हे बिदा मै गाकर,
भार झेलती गौरव पाकर,
यह विश्वास न उठता हा कर।
बनता मेरा राग न रोग।
मिला न हा ! इतना भी योग।

वह इस लिए और भी व्यथित है कि उसके प्रियतम ने उस पर विश्वास नही किया—

दूँ किस मुँह से तुम्हे उलहना,
नाथ, मुझे इतना ही कहना।
हाय ! स्वार्थिनी थी मै ऐसी
रोक तुम्हे रख लेती ?
जहाँ राज्य ही त्याज्य,
वहाँ मैं जाने तुम्हे न देती ?
आश्रय होता या वह बहना ?
नाथ, मुझे इतना ही कहना।

अपने मन को समझाती हुई कहती है—

अब कठोर हो वज्रादिप
ओ कुसुमादीप सुकुमारी।
आर्य-पुत्र दे चुके परीक्षा,
अब है मेरी बारी।

उसकी व्याकुलता इसी प्रकार निराशा के हिंडोले पर झूलती है। वह राहुल जननी बन कर सोचती है—

गोपा गलती है, पर उसका
राहुल तो पलता है।
अश्रु-सिक्त आशा का अंकुर,
देखूँ कब फलता है।

कभी अपना मन गाकर बहलाना चाहती है—

कूक उठी है कोयल काली,
ओ मेरे वन माली।

शीघ्र ही उसे प्रकृति के विलास मे अपना अन्तर्द्वन्द्व साकार होता दीख पड़ता है। वह सोचने लग जाती है—

माना, ये खिलते फूल सभी झड़ते है,
जाना, यह दाडिम, आम सभी सड़ते हैं।
पर क्या योंही यह कभी टूट पड़ते है ?
या काँटे ही चिर-काल हमे गड़ते हैं ?
मै विफल तभी, बीज-रहित हो जाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मै पाऊँ ?

वह कभी-कभी अन्तर्द्वन्द्व मे स्वयं को भी भूल जाती है। उसके स्वप्न भी उसे जागरण बन जाते हैं। स्वयं से वह पूछती है—

उठती है अन्तर में कैसी
एक मिलन जैसी उमंग,
लहराती है रोम-रोम में

अहा ! अमृत की-सी तरंग ।
पाना दुर्लभ नहीं, कठिन है
रख पाने का ही प्रसंग ।
मिला मुझे क्या नहीं स्वप्न मे
किन्तु हुआ वह स्वप्न भंग ।

जब वह प्रियतम का सिद्धि-लाभ करके आने का सन्देश पाती है, तो वह अपने मन से कह उठती है—

रे मन ! आज परीक्षा तेरी
बिनती करती हूँ मै तुझसे,
बात न बिगड़े मेरी ।

सिद्धि-प्राप्ति के पश्चात् जब सिद्धार्थ लौट आते हैं, तभी यशोधरा का अन्तर्द्वन्द्व उनके दर्शन करने के बाद शान्ति को प्राप्त होता है । वह अपने प्रियतम को अपने हृदय का टुकड़ा दान कर, उनकी शरण में अपनी मनोव्यथा को आनन्द का पात्र बना देती है । वास्तव में भिक्षुक बनने वाले सिद्धार्थ को देने के लिए यशोधरा के पास था ही क्या ? जिसका अन्तर्द्वन्द्व नष्ट हो जाता है मुक्ति उसकी चेरी बन जाती है । गोपा की कथाएँ—उसका अन्तर्द्वंद्व—ही मानो अपनी सीमा-रेखा तोड़ कर विश्व-सुख का आधार बन गया । तभी अन्त में यशोधरा अपनी मनो-व्यथा भूलकर कह उठती है—

मेरे दुख में भरा विश्व-सुख ,
क्यों न भरूँ फिर मै हामी ।
बुद्धं शरणं, धर्म शरणं ,
संघं शरणं गच्छामिऽ ।

यशोधरा का सन्देश

यशोधरा की कला की पृष्ठ-भूमि पर नारी के मन की कथा वेदना और विवशता को व्यक्त करते हुए गुप्तजी ने राष्ट्रीय-चरित्र

को विकसित करनेवाले आत्म-संयम, आदर्श-पालन, त्याग और सद्-गृहस्थ जीवन की महत्ता आदि आदर्शों का दिग्दर्शन कराया है।

यशोधरा के जीवन की कथा की लपेट में कवि ने समस्त नारी-जाति के दुःख-दर्द की गाथा गाई है। संसार मे स्त्री के दो रूप प्रधान रहे हैं। एक माता का रूप और दूसरा पत्नी का। इन दोनो रूपो मे संघर्ष रहता है। फलत. कभी पत्नी पक्ष प्रबल हो जाता है तो कभी मातृ-पक्ष। नारी रूप मे वह निर्लिप्त-भाव विषय भोग, तृष्णा, कामना और मुक्ति की भावना तक का त्याग कर इन्द्रियजित हो काल-यापन करती है। इस प्रकार वह मानव के रूप मे दैवत्व से पूर्ण रहती है। अतुल-त्याग द्वारा मनुष्य देवता बन जाता है। यह प्रथम सन्देश है, जो हमे यशोधरा मे प्राप्त होता है।

दूसरा सन्देश हमे माता यशोधरा से मिलता है। यह सन्देश नारी के त्याग की ओर संकेत करता है। यशोधरा अपने सुख-दुःख की चिन्ता न करके राहुल के लिए तिल-तिल गलना जानती है। उसका आदर्श गोस्वामी जी के शब्दो मे—

जिय विन देह, नदी बिन बारी।
तैसेइ नाथ पुरुष बिन नारी॥

रहा है। पति चाहे उसे आत्मोन्नति मे बाधक समझकर त्याग दे परन्तु नारी तो स्पष्ट घोषणा करती है—

चाहे तुम सम्बन्ध न मानो,
स्वामी! किन्तु न टूटेंगे ये, तुम कितना ही तानो।
पहले हो तुम यशोधरा के, पीछे होगे किसी परा के,
मिथ्या भय है जन्म-जरा के, इन्हे न उनमे सानो,
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

इस प्रकार यशोधरा से हमें त्याग एवं अनन्यता की भावना का सन्देश मिलता है। आज के विशृंखल समाज मे स्वार्थ, त्याग

एवं सहयोग की भावना का होना अनिवार्य प्रतीत होता है। समाज मे शान्ति, कर्तव्य-भावना के द्वारा हो सकती है। यही भावना हमे यशोधरा मे सर्वत्र छिटकी मिलती है। इसके अतिरिक्त इन्द्रिय-दमन, आत्म-संयम तथा आत्म-त्याग की महान् आवश्यकता की ओर भी गुप्तजी ने संकेत किया है। लोक-मान्य तिलक के कर्म-काण्ड का भी समर्थन किया है। वह नियमित, सुव्यवस्थित जीवन को मानव के लिए कल्याणमय मानती है। यथा—

यदि, हम मे अपना नियम तथा शम दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहे, स्वस्थता सम है।

कवि का पूर्ण विश्वास है—

अपने को जीता जहाँ, वही सब जीत है।

इस प्रकार हम यशोधरा मे अतुल त्याग, नारी का अनुपम त्याग, समाज मे शान्ति एवं कर्तव्य-परायणता की भावना को प्रसारित करना ही पाते है।

यशोधरा में वैष्णवता

वैष्णव परिवार मे पालित एवं पोषित होने से गुप्तजी मे वैष्णवता की भावना स्पष्ट रहना चाहिए। आधुनिक युग के जागरुक घटक रहने से गुप्तजी रूढिवादी धर्मान्ध वैष्णव नही है। वह सगुण ईश्वर को मानते है और अवतार-वाद मे विश्वास रखते है। वैष्णवो की भाँति वह मोक्ष की इच्छा नहीं करते। गुप्तजी ने आरम्भ मे एवं महाभिनिष्क्रमण के समय जो प्रार्थना करवाई है, वह सारे धर्म समझ कर दी गई है।

गुप्तजी ने राम को क्रान्तिकारी रूप मे साकेत मे अंकित किया है, जिससे अनुमान होता है कि तुलसी के उस भव-भार निवारण करनेवाले राम से ही विरक्त होकर, वर्तमान आवश्यकतानुसार ही राम का रूप स्वीकार करते हैं।

प्रोफेसर वासुदेवनन्दन के अनुसार गुप्तजी की कविता में स्फूर्ति, लोक-हित के अभाव की मूर्ति और सुखद जीवन स्थापित करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। आपने सरल और कोमल दृश्यो की अभि-व्यक्ति की है। गुप्तजी ने अपने काव्य मे अन्य वैष्णव-कवियो के समान काव्य-कला उपदेश का सम्मिश्रण नही किया, वरन् उसमे रमणीयता और शिक्षा के समान रूप से स्थान दिया है। यह इस कारण कि देश की परिस्थितियाँ ही ऐसी है।

वैष्णव भगवत-लीला मे लीन रहना चाहता है। वह मोक्ष नहीं चाहता। 'कह मोक्ष किस लिए मै तुम्हे पाऊँ' वह इसी संसार को स्वर्ग बना लेना चाहता है। यह मनुष्य के अपने हाथ की बात है।

यदि, हम में अपना नियम तथा शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहे, स्वस्थता सम है।

वासनाओं से पराभूत संसार नर्क है। जब हम अपने मनोबल एवं आत्मबल का परिचय दे तो यही संसार स्वर्ग बन जाता है। यथा—

अपने को जीता जहाँ, वही सब जीत है।

जो मनुष्य संयम, नियम, आत्म-निग्रह, इन्द्रिय-दमन, व्यवस्था, तथा सात्विकता अपना लेता है, उसका जीवन स्वर्ग बन जाता है। सासारिक दुख, रोग और शोको से छुटकारा पाने के लिए संसार से पलायन करना ठीक नहीं। इस प्रकार की भावना अकर्मण्यता एवं डरपोक-पन है। जब प्रकृति नियम बद्ध कार्य-क्रम मे व्यस्त है, तो मनुष्य किस प्रकार इसका अपवाद हो सकता है। गुप्तजी के अनुसार संसार मे रहकर सासारिक माया-मोह से निर्लिप्त रहे, यही सच्चा पुरुषार्थ एवं सत्य साधना, मोक्ष की कुंजी है। यथा—

जल मूल मातृत्व मिटाओ, मिटे मरण चौरासी।

आपका मत है कि दुखानुभव के पश्चात् ही सुख की महत्ता प्रकट होती है। क्योंकि—

होता सुख का क्या मूल्य, जो न दुख रहता ?
प्रिय हृदय सदय हो तपस्या क्यों सहता ?

संसार का दुख, रोग, शोक, संसार मे रहकर ही भगाया जा सकता है, संसार से भाग कर नही। अतः स्पष्ट है कि यशोधरा मे उदार वैष्णव-भावना के साथ नारी के महत्व की भावना ओत-प्रोत है।

राधा, यशोधरा और उर्मिला

प्रिय प्रवास की राधा—राधा प्रिय-प्रवास की आत्मा है। राधा का प्रणय-प्रेम बालक-बालिकाओ का पारस्परिक प्रेम, बाल्यकालीन परिचय से ही विकसित हुआ है। लोक-हित भावना से प्रेरित होकर मथुरा गमन के पश्चात् राधा भी लोक-हित कार्यों मे संलग्न हो जाती है। यथा—

रोगी वृद्ध जनोपकार निरता सच्छन्न चिन्ता परा,
राधा श्री सुमुखी विशाल-हृदया स्त्री-जाति रत्नोपमा।

इस प्रकार राधा की सहृदयता एवं त्याग-भावना का हमे पता चलता है। इस भावना की प्रौढ़ता के दर्शन हमे राधा के 'पवन द्वारा भेजे हुए सन्देश से होते है। इस सन्देश को पढने के पश्चात् राधा की उदारता, परोपकारी भावना एवं लोक-हित प्रवृत्ति का अनुमान हम कर सकते है। साथ ही नारी-हृदय की दुर्बलता, ममता, मोह और आसक्ति राधा के चरित्र मे हमे सर्वत्र छिटकी मिलती है। प्रेमिका राधा का परिस्थिति जन्म, परवशता एवं कृष्ण की निष्ठुरता के कारण, विरह-वेदना का वर्णन ही इस महाकाव्य का उद्देश्य है। वह उद्धव से स्पष्ट कहती है—

नाना स्वार्थों विविध सुख की वासना मध्य डूबा।
आवेगो से बलित ममतावान् है मोह होता।

× × ×

सद्य: होती फलित चित्त में मोह की मत्तता है।
धीरे प्रणय बसता कॉपता है उस मे।
हो जाती है विवश अपरा वृत्तियॉ मोह द्वारा।
भावोन्मेषी प्रणय करता सर्व सद्वृत्ति को है।
देखी जाती कुँवर वर के रूप मे ही महत्ता।
पायी जाती मुरलि-स्वर मे कामिनी दिव्यता है।
प्यारे-प्यारे सगुण-गण के सात्विकी मूर्ति वे है।
कैसे व्यापी प्रणय उनको अन्तरो मे न होगा।

रीति-कालीन नायिकाओ के समान राधा चित्त-विकार से विवश होकर पुष्पो एवं हवा को भिन्न-भिन्न प्रकार के उपालम्भ देती है। अन्त मे राधा पर—

मुश्किलें इतनी पड़ी कि वह भी आसॉं हो गयी।

अब प्रणय के भयंकर, प्रखर और वाहक स्वरूप शीतल, मनोहर और निर्माणात्मक हो गये। इस परिवर्तन के पश्चात् राधा का नूतन जन्म ो गया और प्राकृतिक पदार्थ राधा को विषाद देने के स्थान पर आनन्द-प्रद ही लगने लगे—

जो होता है उदित नभ मे कौमुदी-कान्त आके।
या जो कभी कुसुम बिकसा देख पाती कहीं हूॅ।
लोने-लोने हरित-दल के पादपो के बिलो के।
प्यारा प्यारा विकच मुखडा है मुझे याद आता।

इस भावना से प्रेरित होकर अब राधा इच्छा करने लगी—

प्यारे आवे मृदु वचन कहे प्यार से अंक लेवे,
ठंडे होवे नैन, दुख हो दूर, मै मोद पाऊॅ।
ए भी हैं भाव मम उर के और ए भाव भी है,
प्यारे जीवे जग-हित करे गेह चाहे न आवे।

अन्त मे वह घोषणा कर देती है कि—

मै ऐसी हूॅ न निज दुख से कष्टिता शोक-मग्ना,

हाँ, जैसी हूँ व्यथित, ब्रज के वासियों के दुखों से।
गोपी गोपों व्यथित ब्रज की बालिका बालकों को,
आके पुष्पानुपम मुखड़ा कृष्ण प्यारे दिखावे।

धीरे धीरे राधा—

दीनों की थी भगिनी, जननी थी अनाश्रितों की,
आराध्या थी अवनि ब्रज की, प्रेमिका विश्व की थी।

विकास प्राप्त कर नारी से देवी हो गयी। इसका अर्थ ही यह है कि वह दुख और सुख के अन्तर का अनुभव करनेवाली अवस्था से मुक्त होकर उस अवस्था मे पहुँच गयी, जहाँ विषाद और हर्ष मे कोई भेद-भाव नही रह जाता।

यशोधरा—यशोधरा पति-वियोगिनी है। राधा के समान इसका वियोग निर्बाध है। कहा जा सकता है कि मुक्ति की खोज कर गौतम घर लौट तो आये, परन्तु क्या उनके लौटने के पश्चात् उनका चिर-संयोग हो सका? वास्तव मे वह तो चिर-वियोग ही था। अपने पति को एक बार खोकर उसने, उनको सदा के लिए खो दिया। राधा के समान यशोधरा भी स्पष्ट कहती है—

सिद्धि हेतु स्वामी गए यह गौरव की बात।

अतः वह चाहती थी कि पति को आदर के साथ विदा दे। यशोधरा मे उत्तरदायित्व की भावना बड़ी तीव्र है। वह राज-वधू है। राज-धर्म उसके कुल का धर्म था। राज्य को छोड़कर मुक्ति के लिए घूमने मे जो आदर्श निहित है, वह निस्सन्देह राजकीय भोग-विलास के वातावरण मे पलनेवाले राज-धर्म से कही ऊँचा है। अपने वियोग के समाधान के लिये यशोधरा बहुत ऊँची उठ जाती है। वह अपनी दृढता और गम्भीरता को यथाशक्ति हाथ से नही छूटने देती है। सामाजिक आदर्श, कौटुम्बिक शिष्टाचार आदि हमारे सामने एक माप उपस्थित कर देते हैं, जिसकी संगीत में हमारे

आचरण की प्रगति करनी चाहिये। यशोधरा इस माप से बहुत ऊँची उठ जाती है। वह कहती है—

मिला न हा ! इतना भी योग,
मै हँस लेती तुझे वियोग।
देती उन्हे विदा मै गाकर,
भार झेलती गौरव पाकर,
यह निःश्वास न उठता हो कर
बनता मेरा राग न रोग,
मिला न हा ! इतना भी योग।

यशोधरा बडी उदार है। यह बात उसकी गौतमी के साथ वार्तालाप होने से प्रकट होती है—

गौतमी—"निर्दय पुरुषो के पाले पडकर हम अबलाजनों के भाग्य मे रोना ही लिखा है।"

इस कथन से सहमत न होकर यशोधरा फटकार कर उत्तर देती है—

"अरी तू उन्हे निर्दय कैसे कहती है। वे तो किसी कीट-पतंग का भी दुख नहीं देख सकते।"

गौतमी फिर इसका विरोध करती है—

"तभी न हम लोगो को इतना सुख दे गये है।"

इसपर यशोधरा कितनी गम्भीरता-पूर्वक कहती है—

"वे हमारे सच्चे सुख की खोज मे गए है।"

पति-वियोग मे यशोधरा अब इतनी दुर्बल हो गई है कि उसका पुत्र राहुल ही उसे नहीं पहचान पाता। एकाएक चित्र देखकर वह कहता है—

"अरे, यह तो देख, पिता के पास ही यह कौन खडी है ? वे उसे मरकत की माला उतार कर दे रहे है। यह हाथ बढ़ा कर संकुचित सी हो रही है।"

यशोधरा के हृदय में पीडा के प्रबल झोके आते है, किन्तु उनमे इतना बल नही कि वे उसके पैर उखाड़ दें। प्रियतम का उसके प्रति उपेक्षा-भाव आत्माभिमान की भावना को जाग्रत कर देता है और वह अपने से च्युत न होने का निश्चय कर लेती है। वह अपनी आँखो को तरसा कर प्राणो को तडपा कर जहाँ की तहाँ पडी रहती है।

यशोधरा मे मुक्ति की ऐसी खोज करने के प्रति विद्रोह है जिससे सासारिक कर्तव्यो को विस्मृति के अंक मे फेक कर, अपनी प्रगति का पथ परिस्कृत करने का प्रयास किया जाता है। गौतम के अनुसार—

रिक्त-मात्र है क्या सब भीतर बाहर भरा-भरा ?
कुछ न किया, यह सूना भव भी यदि मैने न तरा।
यशोधरा का स्पष्ट तर्क-युक्त उत्तर है—
यदि हम मे अपना नियम और शम-दम है,
तो लाख व्याधियाँ रहे स्वस्थता सम है।
वह जरा एक विश्रान्ति, जहाँ संयम हैं,
नवजीवन-दाता मरण कहाँ निर्मम है ?
भव भावे मुझको और उसे मै भाऊँ।
कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मै पाऊँ।

इस प्रकार यशोधरा आधुनिक युग की शिक्षिता नारी की प्रतीक है। यशोधरा के द्वारा कवि ने यह संदेश समाज को दिया है कि व्यक्ति को समाज-हित के लिए प्रसन्नता अथवा विवशता से आत्म त्याग की साधना के लिए उद्यत रहना चाहिए। कवि ने यशोधरा को व्यक्ति-मात्र नही रखा है, वरन् वह एक भावना अथवा एक पक्ष की प्रतिनिधि के रूप मे हमारे सामने आती है।

साकेत की उर्मिला—मथुरा के कुचक्र से भगवान् राम को कर्तव्य-परायणता के कारण वन-गमन करना पडा। लक्ष्मण ने भ्रातृ-प्रेम के कारण उनका अनुगमन किया। नव-बधू उर्मिला को इस परिस्थिति

के कारण सबसे कठिन कष्ट सहन करना पडा। वही विषाद, साकेत की कथा की रीढ़ की हड्डी उसी प्रकार बना, जिस प्रकार यशोधरा ग्रन्थ की धुरी।

साकेत के आरम्भ मे उर्मिला और लक्ष्मण के हास-परिहास का वर्णन है। इस आनन्द-विहार के पश्चात् परिस्थिति-जन्य कष्टो का दिग्दर्शन कराकर कवि ने करुणा की भावना को तीव्रता प्रदान कर दी है। उर्मिला को चतुर्दश वर्ष विरहाग्नि मे तपना था। उसने अपना सम्पूर्ण वियोग काल कातर करुणा-जनक रोदन मे ही व्यतीत किया। जब उर्मिला सुनती है कि उसका पति मरणासन्न है तो—

आश युक्त समीप सकी लक्ष्मण की रानी।
प्रकट हुई ज्यो कार्ति-केय के निकट भवानी।
जटा-जाल से बाल विलम्वित छूट पड़े थे।
आनन पर सौ अरुण घटा मे फूट पड़े थे।
माथे का सिन्दूर सजग शृंगार सदृश था।
प्रथमातप सा पुष्प-गात यद्यपि वह कुश था।
बाँया कर शत्रुघ्न पृष्ठ पर कण्ठ निकट था।
दाये कर मे स्थूल-किरण-सा शूल बिकट था।

इस रूप मे उर्मिला आगे-आगे कीर्ति सी चल दी। भगवान् राम उर्मिला के तप की प्रशंसा करते हुए कहते है—

तूने तो सह-धर्म्य चारिणी के ऊपर,
धर्म्य स्थापन किया भाग्य, भाग्य शालिनि इस भू पर।

'यशोधरा मे स्वयं अभिताभ का कथन है—

दीन न हो गोपे, सुनो, हीन नहीं नारी कभी,
भूत - दया-मूर्ति वह मन से, शरीर से।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यशोधरा मे त्याग की भावनाओ का स्तर संकुचित स्वर से उठकर लोक-व्यापक हो गया है।

वियोगिनी उर्मिला काम के सताने पर कहती है—

नहीं भोगिनी यह मैं कोई जो तुम जाल पसारो ।
बल हो तो सिन्दूर-बिन्दु यह, यह हा ! नेत्र निहारो ।
रूप-दर्प-कन्दर्प ! तुम्हे तो मेरे पति पर वारो ।
लो यह मेरी चरण-धूलि उस रति के सिर पर धारो ।

पति के वन-गमन पर उर्मिला कहती है—

यदि स्वामी - संगिनी रह न सकी ।
तो क्यो इतना भी कह न सकी ॥

× × ×

है प्रेम स्वयं कर्तव्य बडा ।
जो खीच रहा है तुझे खड़ा ।
यह भ्रातृ-स्नेह न ऊना हो ।
लोगो के लिए नमूना हो ।

भ्रातृ-स्नेह के इस महत्व को स्वीकार कर वह अपने मन को समझाती हुई कहती है—

हे मन !

तू, प्रिय-पथ का विघ्न न बन,
आज स्वार्थ है त्याग भरा,
हो, अनुराग विराग भरा ।
तू विकार से पूर्ण न हो
शोक-भार से चूर्ण न हो ।

इस प्रकार उर्मिला ने भगवान् राम की प्रीति की बलिवेदी पर आहुति देकर, अपने पति के प्रति असीम आस्था दिखाकर आत्म-त्याग की भावना को प्रदर्शित किया है । उर्मिला के इस त्याग मे यशोधरा की सार्व-भौमता नही है । उर्मिला वसन्त-ऋतु के आगमन पर कहती है—

हे ऋतु-वर्य ! क्षमा कर मुझको देख दैन्य यह मेरा,
करता रहे प्रतिवर्ष, यहाँ तू, फिर-फिर अपना फेरा ।
सी-सी करती हुई पार्श्व मे पाकर जब तक मुझको,
अपना उपचारी कहते थे मेरे प्रियतम तुझको ।

यहाँ उर्मिला का दैन्य व्यक्तिगत स्वार्थ की हानि से सम्बन्ध रखता है। उसके आँसू लक्ष्मण की सम्पत्ति हैं। वे उन्हीं के चरणो मे अर्पित हुए है। वे विश्व की सम्पत्ति नहीं। अतः वह विश्वात्मा के पद-पद्मो पर नही चढे हैं। उनमे अतिशयता ही अधिक है। उसकी लालसा को हम केवल पति के शारीरिक मिलन मे ही केन्द्रीभूत देखते है। यशोधरा मे मन के मिलन की ओर संकेत है। अन्त मे साक्षात्कार होने पर भी यशोधरा वासनात्मकता का परिचय नही देती, वरन् यह जानकर कि भगवान् बुद्ध के हृदय में एक कोना उसे भी मिला हुआ है, वह सन्तोष कर लेती है और उन्हे विश्व-कल्याण के कार्य करने के लिए स्वतन्त्र कर देती है।

प्रिय-मिलन की संभावना के समय उर्मिला दुःख का अनुभव करती है। क्योंकि —

पर यौवन-उन्माद कहाँ से लाऊँगी मै ?
वह खोया धन आज कहाँ सखि पाऊँगी मै ?
× × × ×
विरह रुदन गया, मिलन मे भी मैं रोऊँ ।
मुझे और कुछ नही चाहिए, पद-रज धोऊँ ।

परन्तु यशोधरा हाय-हाय न कर मर्यादा का पालन करती है और निश्चिन्तता से घटना-क्रम को देखती है। जब यशोधरा ने विश्व-कल्याण व्रत ले लिया, फिर अपना सर्वस्व वार देना वह अपना कर्तव्य समझती है और समय आने पर पति एवं पुत्र दोनों को ही विश्व-कल्याण की बलिवेदी पर चढ़ा देती है।

प्रिय-प्रवास की राधा परिस्थिति की कठोरता और कृष्ण के

मिलने की असम्भवता से प्रेरित होकर जन-सेवा की ओर प्रेरित होती है। अत: स्पष्ट है कि यशोधरा का चरित्र राधा से अधिक सुष्ठु परिष्कृत एवं आदर्श-पूर्ण है।

सारांश यह है कि प्रिय-प्रवास की राधा, साकेत की उर्मिला तथा यशोधरा के विरह का आदर्श जैसे साकार हो गया है, उस युग का सन्देश सेवा है। राधा, उर्मिला और यशोधरा तीनो ही सेवा के आदर्श को ग्रहण कर अपनी व्यथा का उन्नयन करती है।

यशोधरा में गुप्तजी की कला

भाषा—गुप्तजी द्विवेदी-कालीन खडी बोली के प्रमुख कवि हैं। यशोधरा मे आपकी भाषा पूर्ण निखार के साथ प्रयुक्त नही हुई हैं। खड़ी बोली के विकास तथा संस्कार मे गुप्तजी का बहुत बडा हाथ रहा है। गुप्त जी ने शुद्ध संस्कृत-निष्ठ सरल, सरस, मुहाविरेदार, टकशाली, परिमार्जित, प्रसाद-युक्त एवं व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग किया है। आपने साफ-सुथरो, स्वाभाविक एवं सुबोध भाषा मे अपने ग्रन्थो की रचना कर खड़ी बोली को स्थिरता प्रदान की है। यद्यपि भारतेन्दु काल से खडी बोली को काव्य-भाषा बनाने का प्रयास किया जा रहा है। किन्तु गुप्तजी से पूर्व उसको एक समता कोई प्रदान न कर सका। जब हम गुप्तजी के पूर्व के साहित्यकारों पर दृष्टिपात करते है तो हमे ज्ञात होता है कि पं० श्रीधर पाठक की भाषा, ब्रजभाषा की लपेट पर लॅगडाती चलती है और हरिऔध का प्रिय-प्रवास समासान्त पदावली से युक्त एवं संस्कृत-गर्भित रहने से नितान्त शुद्ध नही कहा जा सकता; परन्तु गुप्तजी ने खड़ी बोली का उत्कृष्ट एवं परिमार्जित रूप हमारे सम्मुख उपस्थित किया है, जिसके कारण आप जन-साधारण के कवि हो गए है। आपकी भाषा प्रभावोत्पादक, शक्तिशाली, सरल एवं मधुर और बोधगम्य रहने से आदर्श मानी जा सकती है। उदाहरणार्थ निम्न पंक्तियॉ देखिये—

'भव' का यह विभव साथ, थाती भर किन्तु हाथ।
ले ले कब लौट नाथ? सौंप बचे चेरी।
जीर्ण-तरी, भूरि भार, देख, अरी, ऐरी।
हुआ विवाद सदय-निर्दय में उभय आग्रही थे, स्व विषय में
गई बात तब न्यायालय मे, सुनी सभी ने जानी।
सुनी सभी ने जानी? व्यापक हुई कहानी।

संस्कृत-निष्ठ एवं तत्सम रूपो मे लदी रहने पर भी गुप्तजी की भाषा क्लिष्ट नही है—

अम्ब, स्वप्न देखा है रात,
लिए मेष-शावक गोदी मे खिला रहे है तात!
उसकी प्रसू चाटती है पद कर कर के प्रणिपात।
घेरे हैं कितने पशु-पक्षी, कितना यातायात।

यद्यपि कहीं-कही भाषा बड़ी कर्कश तथा नीरस भी हो गई है, परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम है।

बाहर से क्या जोड़ूँ जाड़ूँ? मै अपना ही पल्ला झाड़ूँ।
तब है जब वे दाँत उखाड़ूँ, रह भवसागर-नक्र
घूम रहा है कैसा चक्र।

गुप्तजी ने लगभग सभी स्थलों पर चुस्त, सतेज एवं परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है। एक आध ही स्थान पर अनुप्रास-प्रियता का लोभ वह संवरण न कर सके है जिससे कही-कही पर भाषा मे शिथिलता एवं अस्वाभाविकता आ गई है। उदाहरण से स्पष्ट है-

तेरा चन्द्र-हार वह टूटा, किसने हाय, भरा घर लूटा?
अर्णव-सा दर्पण भी छूटा।

कहीं-कही झौटा, कसाला, अत्र-भवति, गौरिक-दुकूलिनी, कशा, तत्र-भवान् आदि प्रान्तीय अप्रचलित शब्दो का प्रयोग भी आपने किया है। किसी-किसी स्थल पर दिव्य मूर्ति-वंचित मानस मुक्ताहार आदि समासान्त पदों का प्रयोग भी हुआ है। यह सब होने पर भी

यह निश्चित है कि व्याकरण की भूले आपकी भाषा में अपवादों को छोड़कर कही नही मिलती। उदाहरण के लिए--

१—सब सहने को देह बना।

२—अन्तरात्मा भी मेरा था क्या विकृत विकारी।

मे लिग दोष स्पष्ट है। इन दो-चार भूलो के रहते हुए भी हम गुप्तजी को उच्चासन से च्युत नही कर सकते।

यत्र-तत्र आपने मुहावरों का भी उपयोग किया है—

१—हॉ, गोपा का **दूध जमा है** राहुल ! मुख में तेरे।

२—मेरे जीवन के रस तूने मुझसे **मुँह मोड़ा।**

३—भरे है अपने भीतर आग तू ! **री छाती फटी** न हाय !

कहीं-कही 'खुजलाऊँ मै क्या बैठ काम' सरीखे भद्दे मुहाविरे भी आपने प्रयुक्त किये है।

कहीं-कहीं ध्वन्यात्मक अनुप्रास भी हमें मिल जाता है—

यह धन, तम सन-सन यमन जाल,
मन मन करता यह काल-काल।

अत: स्पष्ट है कि गुप्त जी का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। यशोधरा मे नाट्यकीय तत्व एवं कथनोपकथन बडे सुन्दर बन पडे है। भाषा सर्वत्र मनोहारिणी, स्वाभाविक एवं सुस्पष्ट है।

शैली—गुप्त जी ने बडे चातुर्य से भिन्न भिन्न अवसरो पर कथोपकथन, दृश्य-चित्रण, तथा स्वगत-कथन द्वारा कथानक की पूर्ति की है। यह सत्य है कि यशोधरा मे घटनाओ का सर्वथा अभाव है, परन्तु यह कमी कवि ने आन्तरिक चित्रो द्वारा पूरी कर दी है। यथा—

आओ, प्रिय! भव मे भाव-विभाव भरे हम,
डूबेंगे, नही कदापि, तरे न तरे हम।
कैवल्य-काम भी काम, स्वधर्म धरे हम,
संसार - हेतु शतबार सहर्ष मरे हम।

यशोधरा के कथनोपकथन अपनी चरम-सीमा को प्राप्त हुए है।

राहुल और गोपा के कथनोपकथनों को देखते ही बन पड़ता है। यशोधरा के अन्तर्नाद को गुप्त जी ने गीतों द्वारा व्यक्त किया है। यथा—

उलट पड़ा यह दिव—रत्नाकर,
पानी नीचे ढलक बहा।
तारक—रत्न-हार सखि, उसके
खुले हृदय पर झलक रहा।

यशोधरा मे कई स्थलो पर नाट्यकीय तत्वों की भी झलक दृष्टि-गोचर होती है—

राहुल का चुपके से गोपा को पीछे से आकर प्रणाम करना, गौतमी का गोपा को सिद्धि प्राप्ति का समाचार देना आदि स्थल सब नाट्यकीय ढंग पर ही विकसित किए गए है।

यशोधरा मे दृश्य वर्णन भी बड़े सुन्दर, सजीव एवं हृदय-हारी हुए हैं—

प्रकट कर गई धन्य रस-राग तू!
पौ, फटकर भी निरुपाय।
भरे है अपने भीतर आग तू!
री छाती, फटी न हाय!

गोपा के चरित्र-विकास मे कथनोपकथन एवं स्वगत कथनों से बड़ी सहायता ली गई है। इस प्रकार प्रबन्ध-काव्य के चरित्र-चित्रण दृश्य वर्णन, कथनोपकथन, नाटकत्व, रस आदि सभी आवश्यक तत्वों का समावेश 'यशोधरा मे हुआ है। इतना सब होते हुए भी यह प्रबन्ध काव्य न होकर एक मिश्रित काव्य ही है जिसमे गद्य, पद्य, नाटक गीत आदि सभी का सम्मिश्रण है। इसके पाठन से प्रबन्ध काव्य तथा खण्डकाव्य दोनों का ही आनन्द प्राप्त होता है।

अन्त में यह कह देना ही पर्याप्त होगा कि विराम आदि का प्रयोग आपने सर्वत्र उचित ही किया है।

छन्द—द्विवेदी काल मे छन्दो के विषय में एक क्रान्ति प्रारम्भ हो गयी थी। इस क्रान्ति ने प्रसाद-युग मे और भी विकराल रूप अपना लिया। इस क्रान्ति के अनुसार पुराने छन्दों का बहिष्कार किया जाने लगा और उनमे तुकान्त, अतुकान्त छन्दो का समावेश किया जाने लगा। धीरे-धीरे अनेको पुराने छन्दो को नया रूप मिला, अनेक उर्दू छन्दो को हिन्दी मे परिणत किया जाने लगा। इस प्रकार अनेक नवीन छन्दो का आविर्भाव हुआ। आचार्य द्विवेदीजी के प्रोत्साहन से कविवर गुप्तजी ने संस्कृत के कुछ वर्ण-वृत प्रयुक्त किये किन्तु शीघ्र ही उन्होने मार्मिक व तुकान्त छन्दो से प्रभावित होकर उन्हे अपना लिया। इसके पश्चात् अनेको पुराने छन्दों को नवीन रूप मे परिणत कर उन्हे अपने काव्यों मे प्रयुक्त किया। यशोधरा मे उनकी इस योजना के दर्शन प्रत्यक्ष होते है।

गुप्तजी ने अधिकतर यशोधरा मे मात्रिक छन्दो को ही अपनाया है। अपने काव्य मे उन्होने छन्दो को स्थान देते समय जनता की रुचि का भी बड़ा ध्यान रखा है। पुराने छन्दो को नवीनता प्रदान करने में गुप्तजी कितने कुशल है, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है। वर्ण-वृत्तों का प्रयोग भी उन्होने सफलता से किया है।

गोस्वामीजी ने निम्न पंक्तियो मे पन्द्रह अक्षरों के जिस छन्द का प्रयोग किया है उसी को गुप्तजी ने 'यशोधरा' में कई स्थलों पर अतुकान्त बना कर प्रयुक्त किया है। यथा—

देखि, द्वै पथिक गोरे-साँवरे सुभग है।
सुतीय सलोनी सँग सोहत सुभग है।
शोभा सिन्धु संभव-से नीके-नीके मग हैं।
मातु पिता भागि बस गए परि फग हैं।
—गोस्वामी तुलसीदास।

गुप्तजी ने इस छन्द को इस प्रकार प्रयुक्त किया है—

गोपे, हम अबला-जनो के लिए इतना
तेज-नहीं, दर्प-नहीं, साहस क्या ठीक है ?
स्वामी के समीप हमें जाने से स्वयं वही ।
रोक नहीं सकते है, स्वत्व आप अपना ।
त्याग कर बोल, भला तू क्या पायेगी बहू ।

यशोधरा मे गीतों की ही अधिकता है जिनमें विभिन्न प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। यह कहना झूठ न होगा कि केशव की राम-चन्द्रिका की भाँति यशोधरा भी छन्दो का भाण्डार है।

रस——यशोधरा शान्ति-रस प्रधान ग्रन्थ है, परन्तु उसमे करुणा, वात्सल्य और विप्रलम्भ श्रृङ्गार का भी परिपाक अच्छा बन पड़ा है। शान्त-रस का स्थायी भाव निर्वेद या शम है। आलम्बन, भगवद्-चिन्तन, संसार की क्षण-भंगुरता, असारता और माया-मोह के भ्रामक रूप का मान आदि उद्दीपन है।

साधू-महात्माओं के आश्रम पावन - गङ्गा-यमुना तट, एकान्त बन, सात्विक-जीवन, पवित्र तीर्थादि का निर्वेद तथा हर्ष आदि इसके संचारी भाव है। इस दृष्टि से यदि विवेचन करे तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते है कि 'यशोधरा' शान्त-रस प्रधान ग्रन्थ है।

ग्रन्थ के रूपारम्भ मे हमे गौतम यौवन, जरा तथा मरण की अवस्थाओं मे लीन दीख पड़ते है—

कैसे परित्राण हम पावे ? और भी—
सूख जायेगा मेरा उपवन, जो है आज हरा ?
सौ-सौ रोग खड़े हो सम्मुख, पशु ज्यों बाघ परा ।
धिक जो मेरे रहते, मेरा चेतन जाय चरा ।
रिक्त-मात्र है क्या सब भीतर बाहर भरा-भरा ?
कुछ न किया, सूना भव भी यदि मैंने न तरा

वह विचार करते हैं, क्या सासारिक जीवन इस लिए है कि-
खाये-पिये बस जिये मरे तू, यँही फिर आये-जाये ?

वह कर्म - काण्ड - तण्डव-विकास वेदी पर हिंसा हास रास ।

'लोलुप रसना का लोल-रस' उन्हे पसन्द न था और इसीलिए महाभिनिष्क्रमण हुआ । ग्रन्थ का अन्त भी शान्त रस से हुआ है । गौतम अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्र सबको दीक्षा देते है ।

यशोधरा कहती है—

मेरे दुख में भरा विश्व-सुख, क्यो न भरूँ मै हामी !
बुद्धं शरणं, धर्मं शरणं, संघं शरणं गच्छाऽमि ।

ग्रन्थ का लगभग आधा भाग वात्सल्य-रस से ओत-प्रोत है । यशोधरा में वात्सल्य का स्थायी भाव है । मातृ-स्नेह का आलम्बन है राहुल । एक उदाहरण देखिये—

नहीं पियूँगा, नहीं पियूँगा, पय हो चाहे पानी ।
नही पियेगा बेटा, यदि तू तो सुन चुका कहानी ।
तू न कहेगी तो कह लूँगा मै अपनी मनमानी ।
सुन, राजा वन मे रहता था, घर सहती थी रानी ।
और हठी बेटा रटता था - नानी-नानी - नानी ,
बात काटती है तू, अच्छा जाता हूँ मै मानी ।
नही नहीं बेटा आ, तूने यह अच्छी हठ ठानी ,
सुन कर ही पीना, सोना मत, नई कहूँ कि पुरानी ।

यशोधरा मे नही-वर्णन, संयत, मार्मिक, सरल, सरस, मौलिक एवं सजीव हुआ है । यह वर्णन नवीन एवं प्राचीन का सुन्दर सम्मिश्रण है । स्मरण, चिन्तन आदि से लोक-मूर्छा तक का सरस वर्णन हमे इस ग्रन्थ मे मिलता है । सुख-भोग, वस्त्र, अलंकार, दर्पण केश किसी की उसे आवश्यकता नही थी । जीवन धारण के लिये फल और दूध के अतिरिक्त उसे सब त्याज्य था । इसके विप्रलम्भ में भी शान्त-रस के दर्शन होते है । विरह-वर्णन के द्वारा उन्होने भारतीयता के चरम आदर्श और जीवन की सुन्दर झांकी दिखाई है । आपने यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतीय नारी वियोग के ताप से

या जीवन की कठोरता से विमुख होकर विदेशी कवियों की विरह-णियों की भाँति न तो जीवन से पलायन करती है और न आत्म-हत्या करती है।

गोपा की विरह-दशा से सम्पूर्ण ग्रन्थ ओत-प्रोत है—

भर हर्ष मे भी शोक मे भी अश्रु, संसृति रो रही।

सम्पूर्ण प्रकृति गोपा के दुख से व्याप्त है—

उठने को ही वाष्प बना, गिरने को ही मेह बना।
मरने से बढ़कर यह जीना।
अप्रिय आशंकाएँ करना भय खाना हा ! आँसू पीना।
फिर भी, बता करे क्या आली, यशोधरा है अवश-अधीना।
कहाँ जाए यह दीना-हीना, उन चरणों मे ही चिर-लीना।

वैरागी पति के समान वह भी अपना जीवन बना लेती है—

जाओ मेरे सिर के बाल।

इस प्रकार यशोधरा का वैराग्य एक कर्तव्य-परायण नारी का वैराग्य है। संसार के प्रति वैराग्य और अपने पति के प्रति अगाध प्रेम और राहुल के पालन-पोषण मे अपना सच्चा आदर्श, उसने माना है।

इस ग्रन्थ मे किसी-किसी स्थल पर हास्य-रस की भी अभिव्यक्ति की गई है। राहुल के अनुसार—

खान - पान तो दो ही धन्य,
आम और अम्बा का स्तन्य।

जब गौतमी कहती है कि तुम्हें तो दो ही पद स्मरण हुए ? तो राहुल उत्तर देता है—

मेरा छन्द क्या चौपाया है—क्यूँ माँ !

इस प्रकार गुप्त जी ने कही-कहीं स्मित हास्य-रस का भी समावेश किया, किन्तु ऐसे स्थल हैं बहुत कम।

अलंकार—महान् कवि अलंकारो की घुड़दौड़ नही लगाते। वह

स्वतः ही उनके अनुगामी रहते है। यशोधरा में स्वाभाविक रीति से आये अलंकारो की ही योजना की गई है। गुप्तजी को अनुप्रास प्रिय लगते हैं, किंतु भावों का बलिदान करके कहीं भी आपने उनका प्रयोग नहीं किया है। यह प्रयोग भी संयतावस्था में ही है—

लट पट चरण, चाल अटपट-सी मन भाई है मेरे,
दहता भी है बहता भी है यह जी सब सहता है।
काल-करों ने धर अम्बर में सारा सार निचोड़ा।

यत्र-तत्र पीपतालंकार का भी प्रयोग हुआ है—

अम्ब, तात कब आयेंगे ?
धीरज धर बेटा, अवश्य हम उन्हे एक दिन पायेंगे।
मुझे भले ही भूल जाएँ वे तुझे क्यो न अपनायेंगे,
कोई पिता न लाया होगा, वह पदार्थ वे लायेंगे।
माँ तब पिता-पुत्र हम दोनों संग-संग फिर जायेंगे।
देना तू पाथेय, प्रेम से विचर-विचर कर खायेंगे।

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि गुप्तजी के काव्य में उपमारूपक तथा उत्प्रेक्षा अलंकार स्वतः आकर उपस्थित हो गये हैं। अनुप्रास भी किसी-किसी स्थल पर आ गए हैं।

यशोधरा का मूल्यांकन

यशोधरा का साहित्यिक मूल्यांकन करने से पूर्व हमे उस समय पर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है, जिस समय उसकी रचना की गई थी। गुप्त जी ने इस ग्रन्थ की रचना उस समय की जब कि देश के कोने-कोने में स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए भारत के मन चले व्यक्ति आन्दोलन उठा रहे थे। ऐसी स्थिति में देश को निडर तथा उत्साही सैनिकों की आवश्यकता हुई। इस समय घर की सीमाओं का महत्त्व नारी को समझ कर 'बाहर' की अवस्था सुधारने की आवश्यकता समझाई जा रही थी। पुरुष को पुत्र के साथ त्याग की वेदी पर निछावर

कर पीछे से स्वयं को भी प्राणि-मात्र के लिए कल्याण-हेतु भेट कर देने का ईश्वरीय आह्वान नारी के कानों मे गुंजित कर देने की ध्वनि धरित्री और गगन से प्रवाहित हो रही थी। ऐसे ही काल मे गुप्तजी ने यशोधरा रची। युग संदेश की उच्च ध्वनि बनकर उसके गीत भारत के नर-नारियो के कानो मे गूँजे। यदि पुरुष को भारत की मुक्ति की खोज की प्रेरणा यशोधरा से प्राप्त हुई तो नारी को घर पर रहकर पुरुष की शुभ कामनायें मनाने तथा वियोग के क्षणों को आत्मज को अंक में लेकर काटने का संदेश मिला। गाँधीजी की विचार-धारा को भी यशोधरा से बड़ी प्रेरणा मिली।

गुप्त जी की रचना 'यशोधरा' मे भाषा, शैली, अलंकार, छन्द आदि सभी ने नवीनता प्राप्त की है। यशोधरा मे नारी-जाति के दिव्य आदर्श की व्याख्या है। इस ग्रन्थ मे नारी-जीवन की समस्या को सुलझाते हुए वात्सल्य का योग देकर, कवि ने शैली मे नवीनता ला दी है। यशोधरा में कवि के ही शब्दो मे—

कविता, गीत, नाटक, गद्य, पद्य, तुकान्त एवं अतुकान्त सभी कुछ है। यशोधरा मे कवि ने पुरानी संस्कृति को नवीनता प्रदान की है। यशोधरा के चरित्र मे भारतीय नारी के अतीत गौरव का त्याग, धैर्य एवं उदारता को विविधाभूषणो से अलंकृत करके अपनी कला का परिचय दिया है।

गोपा को सबसे बडा दु:ख बुद्धजी के चुपचाप निर्वाण प्राप्ति के लिये चले जाने पर है। सह-धर्मिणी का यह क्षोभ अत्यन्त युक्तसंगत है। यही वह क्षोभ है, जिसके कारण इस ग्रन्थ को अद्वितीयता प्रदान हुई है। वृद्ध सास-ससुर को कितने संयम से यशोधरा सान्त्वना देती है, यह देखकर मुन्शी प्रेमचन्द द्वारा रचित 'बड़े घर की बेटी' की याद आ जाती है। गोपा कहती है—

उनकी सफलता मनाओ तात, मन से,
सिद्धि-लाभ करके वे लौटें शीघ्र वन से।

भारतीय नारी का आदर्श है—

जिय बिन देह नदी बिन बारी ।
तै सेइ नाथ पुरुष बिन नारी ॥

—गोस्वामी तुलसीदास

कैसा उच्चादर्श है उपर्युक्त दोहे मे भारतीय नारी का। यशोधरा में भी भारतीय नारी के आदर्श के दर्शन प्रत्यक्ष होते है। पति के सिद्धि प्राप्त करने के लिये काननवासी होने पर वह अपना रहन-सहन ही सन्यासियो-जैसा नही बना लेती है, वरन् वह स्वयं को भी, अपने पति की अवस्था का ध्यान कर वैसा कर लेती है। भारतीय नारी के लिये यह उचित नही कि वह पति को वैराग्यावस्था मे देखकर स्वयं को राजसी ठाठ मे रखे। इसी लिए वह अपने पति की सन्यासावस्था की कल्पना कर स्वयं को भी वैसा बनाने का प्रयास करती है। यहाँ तक कि वह अपने केशो को भी काट डालती है—

जाओ मेरे सिर के बाल
अलि, कर्त्तरी ला मैने क्या पाले काले व्याल ?

जिन बालो को पति की उपस्थिति मे वह कई बार सँभालती थी, उन्ही को, अपने प्रियतम की अनुपस्थिति मे वह व्याल कहकर सम्बोधन करती है। कितनी आदर्शवादिता, पति-परायणता टपकती है इस पद से। पति-आज्ञा के विना वह प्रासाद त्यागने मे असमर्थ है, अत: वह राज-प्रासाद मे ही योगाभ्यास करती है। वह जीवन के वियोग को विरहिणी के रूप मे न झेलकर तपस्विनी के रूप मे झेलती है। यही उसका आदर्श है। भारतीय नारी रहने के कारण वह पति से अपना सम्बन्ध अटूट मानती है। उसका मत है—

चाहे तुम सम्बन्ध न मानो,
स्वामी! किन्तु न टूटेंगे ये, तुम कितना ही तानो।
मिथ्या भय है जन्म-जरा के, इन्हे न उनमे सानो।
चाहे तुम सम्बन्ध न मानो।

कुसुम सी कोमल और वज्र सी कठोर गोपा वास्तव में नारीत्व की साकार प्रतिमा है। उसके त्याग एवं संयम की छटा चरो ओर बिखरी पड़ी है। आगे चलकर इस त्याग ने वह रूप अपनाया है कि समस्त संसार के अन्य त्याग उसी में समा गये है।

गोपा मे आत्म-गौरव की भावना हम पराकाष्ठा पर पहुँची हुई देखते हैं। इसी कारण अमिताभ के कपिलवस्तु मे पधारने पर भी वह स्वागत-हेतु स्वयं जाना स्वीकार नही करती। इस कारण वह स्वयं स्पष्ट कहती है—

क्या देकर मै तुमको लूँगी ?
देते हो तुम मुक्ति जगत को,
प्रभो तुम्हे मै बन्धन दूँगी।

× × × ×

इस प्रकार हम देखते हैं कि यशोधरा में नारी हृदय की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

गुप्तजी की यशोधरा का सबसे बडा मूल्य इसी बात मे है कि उसमें नारी के यथार्थ रूप की व्याख्या भावात्मक पद्धति पर हुई है। नारी के दोनों रूपो, अर्थात् (पत्नी तथा जननी) को समझने का प्रयास एक ही स्थान पर किया गया है, ऐसा अन्यत्र दुर्लभ है।

उस काल के समस्त प्रभावो को अपने मे लीन करती हुई, यशोधरा का काव्य-स्रोत प्रवाहित हुआ है, फलस्वरूप रहस्य-वाद के गीत युग-युग की वस्तु होते हुये भी वह अपना अस्तित्व पृथक् रखकर उनसे वहिष्कृत नहीं हो सकी है। एक शब्द मे कह सकते हैं कि कला-प्रासाद की एक आवश्यक पूर्ति यशोधरा द्वारा हुई है। १६३३ मे गुप्तजी से एक ऐसे ही काव्य की आशा थी। ऐसे समय मे जब कि जनता को यह शिकायत थी कि राष्ट्र भाषा हिन्दी में पूर्वी और पश्चिमी साहित्य का बहुत सा समावेश हो रहा है, अपना लेश-

मात्र भी नहीं—गुप्त जी ने यशोधरा हिन्दी-साहित्य को दी जो कि अतीत के गौरव का एक स्वर्ण-चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करती है।

संक्षेप मे हम कह सकते है कि यशोधरा का स्थान किसी भी प्रकार से साकेत तथा भारत-भारती से कम नहीं। उसका साहित्यिक मूल्याकन करने के लिये निम्न पंक्तियो को सदा स्मरण रखना चाहिए—

अबला-जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी. !

द्वितीय भाग

शब्दार्थ एवं व्याख्या

लेखक—

श्री परमेश्वर दीन वर्मा एम०, ए०

शब्दार्थ एवं व्याख्या

पृष्ठ ११—नीरजनाभ—(नीरज+नाभ) कमलनाल से विष्णु भगवान्। अमिताभ-अधिक आभा वाले, यहाँ पर बुद्धदेव से तात्पर्य है।

पृष्ठ १२—नवनीत=मक्खन। तक्र=मठा। वक्र=टेढ़ा। नक्र=मगर। परित्राण=रक्षा। शक्र=इन्द्र। अन्ततोगत्वा=आखिर कार।

घूम रहा ·····सुर-शक्र।

अर्थ—गौतम संसार की निस्सारता को देखकर सोचते हैं कि संसार परिवर्तन शील है और इसका क्या ही चक्कर है ? हमारे जीवनरूपी दूध को सदैव यह संसारी चक्कर मथता रहता है जिसके कारण सुख तथा सार रूपी मक्खन का कोई पता नही चलता बल्कि छाछ रूपी निस्सार वस्तुएँ ही शेष रह जाती हैं। इस संसार मे जब तक जीवन है तब तक इसी प्रकार कष्ट उठाते रहना पड़ेगा। अब तक किसी प्रकार का प्रभाव पिसते रहने पर भी नही आया है और जैसा पहले था वैसा अब भी है। यह कष्ट-प्रद चक्कर जो बराबर घूम रहा है इसे हम आखिरकार कब तक सहन करते रहे।

हम किस प्रकार इस बन्धन से मुक्ति पा सकते है ? इन सांसारिक झमेलो से छूटने के लिये किन देवी-देवताओ की आराधना करे ? उन देवी-देवताओ को मनाने से लाभ ही क्या हो सकता है, वह स्वयं ही मुसीबतो से परेशान है। क्या ही विचित्र सासारिक चक्कर है जिसमे देवता-इन्द्र आदि भी कुशल से नही है।

पृष्ठ १३—शब्दार्थ—जरा=बुढापा। वर्ण=रंग। सुवर्ण=

सोना। चेतन=आत्मा । रन्ध्र पूर्ण—घट=छेददार घड़ा। मनचीता=मनचाहा। तीता=कटु।

देखी मैने .... मैने न तरा।

अर्थ—गौतम किसी बूढे मनुष्य को देखकर विचार करते हैं कि क्या यह बुढापा वास्तविक है ? ओह ! तो क्या मेरी सुन्दर यशोधरा भी एक दिन वृद्ध हो जायेगी। और क्या उसका वह स्वर्ण रंग भी इस मिट्टी मे विलीन हो जायगा ? मेरी यह हरी-हरी फुलवारी किसी दिन सूख जायगी अर्थात क्या मेरा यह छोटा सा फूला-फला परिवार भी नष्ट हो जायगा ? जिस प्रकार रस्सी से जकड़ा हुआ जानवर लाचार है उसी प्रकार यह सैकड़ो रोग मनुष्य को जकड़कर लाचार बनाए है। परन्तु धिक्कार है हमारे जीवन को यदि सामर्थ्य होते हुए भी हमारा प्रिय चेतन नष्ट कर दिया जाय। हममे वह शक्ति है जिससे हम इन रोगो को नष्ट कर सकते हैं। क्या यह सब ऊपरी ठाठ-बाठ का दिखावा है, वास्तविकता कुछ भी नही है। फिर यदि इस सूने भव सागर को भी न पार कर सके तो यह जीवन व्यर्थ है, अर्थात् इस जीवन मे यदि अपनी आत्मा का उत्थान न किया तो यह जीवन बेकार ही नष्ट हो जायगा।

मरने को ... तीता है।

अर्थ—क्या हम सभी मरने के लिये ही जीवित हैं ? हमारा जीवन क्षीण होता ही जा रहा है, फिर तो हम मरे हुए के ही समान है ? अर्थात् जन्म ग्रहण करना ही मृत्यु को प्राप्त करना है, क्योंकि छेददार घड़े का भरोसा ही क्या ? उसके भरे होने पर भी उसे खाली ही समझना चाहिए। जीवन यो ही बीतता चला जाता है। यह भी पता नही चलता कि सुख-दुःख मे समय कहाँ बीत गया ? अन्त मे दुखद परिणाम ही मिलता है, और मनुष्य हाय करके रह जाता है तथा सोचने लगता है कि कोई भी उत्तम कार्य न किया। पता नहीं चलता कि वह प्यारा जीव कहाँ चला जाता

है। उसकी मै खोज करूँगा जिसकी प्राप्ति के बिना संसार इतना नीरस बना हुआ है। कोई न कोई वस्तु ऐसी सुखदायी अवश्य होगी, उसी को मै अब तलाश करूँगा।

पृष्ठ १४=भुवन=संसार। भावने=अच्छा, प्रिय। भीता=डरा हुआ। अधिवासी=निवासी।

भुवन ... ...गीता है।

अर्थ—ऐ प्रिय भोली-भाली इच्छाओ! अब तुम क्यों भय खा रही हो। अब तुम्हे जीतने के लिये मैं आ गया हूँ। अपने जीवन से पूर्व ही अपनी मुक्ति बनाने के लिये गौतम का एक मात्र उपदेश है।

पृष्ठ १५=अनिवार्य=आवश्यक। दाम=क्रम, बारी। अन्तराम=विघ्न।

बता जीव... ... ...अन्तराम।

अर्थ—हे जीव! कह, यह जीवनरूपी पुष्प क्या इसी लिये है कि मृत्यु अपनी इच्छा से समय और कुसमय जब भी चाहे खाए, अर्थात् इस बालपन और यौवनमय जीवन कोत मृत्यु अपनी इच्छा से नष्ट करे। क्या इस जीवन का उद्देश्य एक मात्र मरण ही है? एक बार जन्म लेकर मरना तो कुछ ठीक मालूम होता है, परन्तु इस बार-बार के मरने को धिक्कार है तथा सदैव उस मृत्युके फन्देमे जकड़े रहने को और भी धिक्कार है। हे सिद्धार्थ? तू क्यों हार मान कर बैठता है, उठ और कुछ उपाय कर। किसकी सहायता तू चाहता है? तुझे कोई भी सहायक न मिलेगा। इस कारण तू आगे बढ़कर अपनी अन्तरात्मा के बाधको को, काम, क्रोध, लोभ सभी को नष्ट करने मे लग जा। तुझको सिद्धि की प्राप्ति तभी हो सकेगी।

विशेष—सांसारिक माया के बन्धन मे फँस कर मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को भूल बैठता है। इसी से इस जीवन को नाना

प्रकार की योनियों मे पड़कर कष्ट झेलने पडते है। सिद्धार्थ इस जीवन को धिक्कारते है और स्वयं कहते है कि मनुष्य स्वयं ज्ञान की प्राप्ति करके उस मरण के फंदे से छुटकारा पा सकता है।

भव – भुक्ति = जन्म-मरण का दुःख । मानस हंस = मनरूपी हंस । शुक्ति = सीप ।

पृष्ठ १६—महाभिनिष्क्रमण = महाप्रयाण । 'अकाम = इच्छाओं से परे । क्षणभगुर = थोडी देर मे नष्ट होनेवाले । धाम = घर, स्थान । जागरूक = जाग्रत् अवस्थावाला ।

आज्ञा लूँ ·· राम-राम !

अर्थ—सिद्धार्थ अपने आप सोचते हैं कि मै इच्छा रहित हूँ, मै आज्ञा तुझसे लूँ कि क्या मै जाऊँ अथवा मै तुझे आज्ञा दूँ कि तू यही रह और कल्याण हेतु आने के समय तक तू मेरी प्रतीक्षा करना । हे संसार ! अपने इस स्वप्नवत् जाल को बेकार मे मुझ पर न फेक, इसका प्रभाव मुझ पर कदापि नही पड सकता । मुझे अब होश है, इस अपने राज-पाट, धन-धाम, महल को ले । हे नष्ट होनेवाले संसार तुझे मेरा अन्तिम नमस्कार है ।

पृष्ठ १७—रूपाश्रय = सुन्दर । गात्र = शरीर । कंकाल = ठठरी, हड्डी । प्रच्छन्न = गुप्त । भावी = होने वाला । झटित = शीघ्र ।

प्रच्छन्न · राम-राम !

अर्थ—हमारे इस जीवन मे सुख केवल देखने भर को ही हैं, शरीर के अन्दर रोग भरे हुए है। यह सासारिक भोग-विलास भी गुप्त रोग है । यह आकर्षित करनेवाला संसार दुखदायी है। जीवन मे वर्तमान का मिलन ही भविष्य के वियोग की सूचना देता है। अर्थात् संयोगी को किसी न किसी दिन वियोगी होना पड़ता है ससार के लोग लोभ, मोह मे फँसकर अपनी वास्तविकता और शुद्ध स्वरूप को भूल जाते है । हे नष्ट होनेवाले संसार ! तुझे नमस्कार है ।

मै सूँघ ... ...राम-राम।

मै सभी फूले हुए पुष्प सूँघ चुका हूँ, अर्थात् इस संसार के सभी रंगो मे घूम चुका हूँ। और वह खिले हुए झूमते पुष्प भी नष्ट होने ही वाले है। पुष्पो के पश्चात् उनमें आए हुए फलो को चख चुका हूँ। यह जड़-सहित आम एक दिन सड़ जाने को है, अर्थात् सभी खुशियाँ इस संसार की किसी न किसी दिन नष्ट हो जाने को है। हे नाशवान् संसार ! तुझे नमस्कार है।

पृष्ठ १८—सुन-सुन ... ...'राम-राम।

मैंने सांसारिक सुखो के विषय मे काफी सुना है और उपभोग भी कर लिया है। इससे या तो रोग पैदा होते है अथवा द्वेष। अर्थात् सारा संसार द्वेष-युक्त है। सारा संसार गहरी नीद मे झूम रहा है, वास्तविक ज्ञान को भूला बैठा है और उसे कुछ भी पता नही है। हे नाश होनेवाले संसार ! तुझे प्रणाम है।

परितृप्त=संतोष। काय=शरीर। पाम=नीच। वीतराग=रोगो से दूर। क्षाम=क्षीण, दुबला।

खुजली मे खुजलाने से मिटती नही, बल्कि बढती है। इसी प्रकार विषय-भोगो के भोगने की सदैव इच्छा प्रबल होती है और उनसे सुख तथा शान्ति की प्राप्ति नही होती है।

पृष्ठ १६—वित्त=धन। भ्रान्त=घुमाया हुआ, भूला हुआ। आर्त-दुःखी। विनिवृत्ति हेतु=दूर करने के लिये। केतु=झंडा।

तू दे सकता..........................राम-राम !

अर्थ—हे संसार ? तुझसे अगाध सम्पत्ति हमको मिल सकती है, परन्तु उसके चक्कर मे मै फँस नही सकता। तेरी विषय-वासनाओं के चक्कर मे पड़कर क्या इधर-उधर भटकता फिरूँ। मुझको तो अपना और तेरा अस्तित्व मालूम हो गया है। इसलिये हे संसार ! तू मेरा पीछा छोड़ दे, सामने से भी हट जा, मेरे रास्ते का रोड़ा न बन, और मुझको अमरत्व प्राप्त करने के लिये जाने दे। इस मेरे हाड़-

चाम के लिये न चिन्ता कर, चाहे जब इसे ले लेना । अब तुझे नमस्कार है, ऐ क्षणिक संसार ।

मैं त्रिविध····· ·····················राम-राम !

अर्थ—मै इस जगत् के दुःखों को अपने पुरुषार्थ से नष्ट कर दूँगा । अपने पौरुष बल पर प्रतिज्ञा करता हूँ कि सभी दु.खो का नाश करके संसार को कल्याणकारी पथ-प्रदर्शन कराऊँगा । जब तक इस संसार का कल्याण न होगा तब तक मैं चैन नहीं ले सकता । सारे विश्व का कल्याण करके अपने सिद्धार्थ नाम की पुष्टि करूँगा, तभी सिद्धार्थ नाम सिद्ध होगा । हे क्षण भर में नष्ट होनेवाले संसार ! तुझे प्रणाम् है ।

पृष्ठ २०—कर्म-काण्ड-ताण्डव-विकास=कर्म-काण्ड के आडम्बर का प्रदर्शन । हिंसा-हास-रास=जीवहत्या की हँसी का आनन्द । लोल=चंचल । लोल-लास=एक प्रकार का नाच, पार्वती के नृत्य को लास कहा जाता है । साम=सामवेद । वेदों के नाम पर कर्म-काण्ड का पाखण्ड, जीवहत्या तथा अन्य पापों के कारण वेदों की कैसी दुर्दशा की जा रही है, इसी बात की ओर संकेत है । दृष्टि-लाभ=देखने की शक्ति देना । दण्ड, भेद, साम, दाम=नीति के अंग, भद्र-गान=मंगलगीत ।

आ ·····राम-राम ।

मुझमे ज्ञान की प्राप्ति हो, मेरी आँखों में अच्छी वस्तुओ को देखने की शक्ति आवे । मुझे विजयोल्लास का आनन्द मिले । इस प्रकार मै अपना स्वयं ही स्वामी बन कर विश्व का कल्याण करूँगा । संसार के नीति-नियम, साम, दाम, दण्ड, भेद मै, तुमको आज छोड़े देता हूँ । आशय यह है कि "जब मुझे ज्ञान प्राप्त हो जायगा, तब मेरी दृष्टि त्रिकालदर्शी हो जायगी, मेरे हृदय में सदैव आनन्द की वर्षा होती रहेगी और मै पूर्ण रूप से आत्मा पर विजयी होकर विश्व का कल्याण कर सकूँगा ।

पृष्ठ २१—प्रतिभू=ज़मानत में पड़नेवाला । अमन्द=उत्तम । विधि=ब्रह्मा । वाम=उल्टा । सार=तत्त्व पदार्थ । शुभे=शुभ लक्षणों से युक्त । दुल=दुलारा । दाम=बन्धन ।

पृष्ठ २२—घन=गहरा । व्याल=साँप । विषाक्त=विषपूर्ण । भाम=स्त्री । छन्दक=सारथी का नाम । अभियान=प्रस्थान, यात्रा । याम=समय ।

छन्दक········ राम-राम ।

सारथी छन्दक । उठकर अपने श्रेष्ठ घोड़े को शीघ्र तैयार करो । न तो इस प्रकार मेरे प्रस्थान की बात सुनकर आश्चर्य करो; बस तुरंत घोड़े को सजाओ । आज मै मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिये प्रस्थान कर रहा हूँ । रात्रि का यह समय ही मेरा शुभ-समय है । इस क्षण-भगुर संसार से मै विदा होता हूँ ।

भाण—नाटक । प्रयाण=प्रस्थान, गमन । वात=हवा, वंश-जात=वंश में उत्पन्न ।

पृष्ठ २३—आली=सखी

पृष्ठ २४—सज्जा=साज-शृंगार । व्याघात=चोट । पथ-बाधा रास्ते का विघ्न । पण=व्यवसाय, होड ।

स्वयं········ क्षात्र-धर्म के नाते ।

क्षात्र-धर्म का निर्वाह करने के लिये अपने पति को सुसज्जित कर के युद्धस्थल के लिए, जहाँ कि प्राणो की होड़ लगी होती है, स्वय ही हम स्त्रियाँ विदा कर देती है । फिर यह केवल सिद्धि-प्राप्ति के हेतु की जानेवाली यात्रा थी, मै उन्हे क्यों रोकने लगती ?

पृष्ठ २५—उपालम्भ=उराहना । अपूर्व=जो पहिले कभी न हुआ हो ।

पृष्ठ २६—श्रुति-पथ=कान का मार्ग । कपाट=किवाड । नि:श्वास=गर्म सासे । मौन रहना=चुप रहना ।

पृष्ठ २७—नन्द=सिद्धार्थ का सौतेला भाई । प्राप्य=प्राप्त

होनेवाला । भार=बोझ । सम्प्रति=इस समय, आजकल । राहुल=महात्मा बुद्ध का पुत्र । थाती=धरोहर; वार=न्यौछावर ।

पृष्ठ २८—महाप्रजावती=सिद्धार्थ की विमाता, वत्स =बेटा । ज्वाला=दुखो की अग्नि । जरा=बुढापा ।

पृष्ठ २९—रूपक=नाटक, ठाट-बाट । ताल=गाने-बाजों की गति ।

खींचा—बाण-समान !

धनुष की प्रत्यंचा को जितना ही खींचा जाता है वह धनुष चलाने वाले ही के अधिक निकट आती जाती है तथा पूरी खिच जाने पर उस पर लगा हुआ वाण पूरी तेजी के साथ चला जाता है ! सिद्धार्थ का चला जाना भी ऐसा ही था । शुद्धोदन ने खींच कर उन्हे अपने पास रखने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु वे तीर की तरह पूरी तेजी के साथ तुरन्त चले गए ।

पृष्ठ ३०—ललाम=सुन्दर । धीरा=धैर्यवाली । चरो=गुप्तचरों । प्रतिकूल = उनकी इच्छा के विरुद्ध ।

पृष्ठ ३१ प्रौढ=समझदार । हित=श्रेष्ठ मार्ग । मान्य=स्वीकार । प्रगति = उन्नति ।

तू है सती ·· ····हाय मै ।

शुद्धोदन का धारणा है कि सेवको को चारो ओर भेज कर सिद्धार्थ को ढूँढ निकाला जाए और वापिस बुला लिया जाए; यशोधरा इस प्रयास को अनुचित समझती है, घरवालो को चाहिए कि उनकी सिद्धि की मंगल-कामना करें । अन्त मे शुद्धोदन कहते है कि "बेटो यशोधरा ! तू सती है और पति की अनुगामिनी पत्नी होने के नाते यह बोल तेरे अनुरूप ही है कि तू अपने पति की इच्छा को श्रेष्ठ मानकर उसका आदर करे, परन्तु मै तो पिता हूँ, मुझे उसकी इच्छा की परवाह नहीं, क्योकि मै उसकी इच्छा का आदर करने को बाध्य नहीं हूँ , मुझे तो उसके भविष्य की, उसके भले-बुरे

की चिन्ता है। मेरा बेटा सिद्धार्थ अभी नासमझ एवं सरल है, इसी कारण बहक गया है। उसको खोज निकालने के लिए मै कोई उपाय उठा न रखूँगा।" ससुर की बात को सुनकर यशोधरा कहती है, "मेरे विचार से आप उनसे अधिक सरल और नासमझ है, जो हित को अनहित समझे हैं। आप यह समझ ही नही रहे है कि वे कितनी महान् वस्तु को प्राप्त करने के लिए गए है।"

पृष्ठ ३२ प्रजाजन=जनता। परकोटा = घेरा, चहार दीवारी। विभूति=ऐश्वर्य, छन्दक=सारथी का नाम। कन्थक=घोड़े का नाम जिस पर सवार होकर सिद्धार्थ गए थे। शून्य पृष्ठ=खाली पीठ।

पृष्ठ ३३—सुगति=मरने के पश्चात् अच्छी गति। रमाई=लगा ली। भाई=अच्छी लगी। शिखा भी न भाई=वे पूर्ण संन्यासी हो गए। कश=बाल। सुरभि=सौन्दर्य। निवेश=निवास।

पृष्ठ ३४—कर्त्तरी=कैंची। व्याल=सर्प,सुन्दर काले बालो की उपमा सर्प से दी जाती है। हेमहीर = सुवर्ण, हीरा। चिरकाल= हमेशा। मलिन = मैली। लाल=एक अमूल्य रत्न तथा पुत्र। लाल शब्द पर श्लेष है। अंगराज=चन्दन, केसर, कस्तूरी, कपूर आदि का सुगन्धित लेप। भाल = मस्तक।

पृष्ठ ३५—योग=अवसर, संयोग। वाद्य=बाजा।

मिला…… ….उनको सब लोग।

यशोधरा को इस बात का दु.ख है कि जाते समय वह अपने प्रियतम से मिल न सकी। बडा ही अच्छा होता यदि वह उनको गा-बजाकर खुशी-खुशी विदा करती? वह कह रही है—"हाय! इतना भी मौका न मिला कि मैं अपने प्रियतम को हँसकर बिदा कर देती, और ऐसे महान् उद्देश्य के लिए जाते हुए पति का स्वेच्छा-पूर्वक वियोग सहने का गौरव प्राप्त कर सकती। यदि ऐसा होता तो न तो मुझे आज इस तरह आहे ही भरनी पड़ती और न मुझे पति-प्रेम का इतना दु.ख ही भोगना पड़ता। पर होता कैसे? यह

संयोग तो केवल पूर्व-जन्म के पुण्यों के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है। मेरे भाग्य मे तो रोना लिखा था। यह मेरे पूर्व-जन्म के कर्मों का ही फल है जो चलते समय उनसे मिलने का संयोग भी न प्राप्त हो सका। मै उन्हे सज-धज के साथ स्वयं बिदा कर आती, परन्तु क्या करूँ, उन्होंने मुझे इस योग्य न समझा और वे चुपचाप चले गए; इस कारण मै लज्जित हूँ। लौटने पर जब सब लोग उनका स्वागत करेंगे, उस समय मैं कैसे मंगल-गीतो के साथ उनके सामने जाऊँगी?

पृष्ठ ३६—वंचित=बिहीन। अविनय=अशिष्ट व्यवहार। क्षोभ=दुःख। वज्रादपि=वज्र से भी अधिक। कुसुमादपि=फूल से भी अधिक।

पृष्ठ ३७—सराहा=बड़ाई की। थाहा=थाह ली। नापा=परीक्षा ली। शौर्य-सिन्धु=शूरता का सागर। अवगाहा=डुबकी लगाया। मंथन=छान-बीन।

विकृत=बिगड़ा हुआ। विकारी = दोषी।

मेरे रूप ˙ विकारी।

ऐ मेरे सौन्दर्य ! यदि अपने ऊपर तुझको गर्व है तो मैं बता देती हूँ कि तेरा गर्व व्यर्थ है। यदि तुझ में सचमुच कोई गर्व की बात होती, तो उन्हे बाँध न रखता। (यशोधरा को अपने रूप-रंग—यौवन एवं सौन्दर्य का व्यर्थ ही गर्व था।) वह कई बार कह चुके थे कि "संसार की भाँति रूप-यौवन भी परिवर्तनशील है। जो आज है। वह कल न रहेगा। देखो न, सूर्य की प्रखर किरणों से आलोकित दिन संध्या के अंधकार मे दब कर सहज ही ढल जाता है। संसार की नश्वरता का एक सुन्दर उदाहरण है। सम्भवतः मेरा हृदय ही दोषी था, जो उनकी इस बात का समुचित सम्मान न कर सका।

पृष्ठ ३८—विश्रुत=प्रसिद्ध। इन्द्रियासक्ति=वासनाओं मे लिप्त। चेरे=दास। विरति=वैराग्य। भूरि=धन्य, श्रेष्ठ। वधू-वंश=स्त्री-समाज, अप्सरा-विघ्न=अप्सराओं द्वारा डाली जानेवाली बाधाएँ।

जाओ नाथ····   'यशोधरा करधारी।

हे नाथ ! जाओ और अमरत्व को प्राप्त करो। मै इस जन्म-मरण के चक्कर में—इसी जगत् मे—रहकर सुखी हूँ। तुम जीवनमुक्ति को अपनी चिर सहचरी बानाना, मैं तो तुम्हारी दासी रहकर ही परम सुखी हूँ। तुम तपस्या करो और मै विरहाग्नि की ज्वालाएँ झेलूँ, मुझे तो एक ही संतोष है कि जब-जब लोक तुम्हारे गुणों का गान करेगा, तब-तब उनके साथ मेरी करुण-कहानी की भी चर्चा कर लिया करेगा। लोग जब यह कहेगे कि सिद्धार्थ इतने बड़े तपस्वी थे. तब उन्हे यह भी कहना पडेगा कि उनकी पत्नी यशोधरा ने उनके वियोग मे विरहाग्नि की अनेकों ज्वालाएँ सहन की थीं।"

पृष्ठ ३९ वंचित=रहित। चर्म-चक्षु=चमड़े की बनी हुई ये आँखे। प्रतीत=ज्ञान।

पृष्ठ ४०—मनस्ताप = मन का ताप। कराल = भयंकर। सदय=दयालु। विरुद=यश-कीर्तन। स्यन्दन= रथ। कपाल = भाग्य। जाया = पत्नी।

मरण सुन्दर   'जल जल कर काया री।

हे सखी ! मानो मौत मुझे अत्यन्त प्रिय लगने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह मुझ से डर कर मेरी शरण मे आ गई है। मेरे दुःख को देखकर वह भी दुखी हो गई है और अपनी कठोरता छोड़ कर मेरी कृपालु एवं भली दयावान् सखी बन गई है। अर्थात् मौत मेरे सामने हर समय नाचती है, परन्तु फिर भी मेरी तरफ अपना कठोर हाथ नही फैलाती है। मेरे विरह ने मृत्यु का शृंगार कर दिया है। विरह के कारण मेरी आँखो से निकलनेवाले आँसुओ की उसने माला पहिन ली है, अर्थात् यशोधरा सदैव रोती रहती है और वह मरणासन्न हो गई है। चारो ओर बोलनेवाले पक्षी मानों मृत्यु का यशोगान करते रहते है। खिले हूए फूल, समुद्रों की चंचल लहरे तथा रंगरेलियाँ करता हुआ शीतल, मन्द सुगन्ध पवन, ये सब

वस्तुएँ मेरे लिए दु:खदायी बन गई है। ऐसा मालूम होता है कि मानो मार ही डालेंगी। यह मेरा सौभाग्य है जो मै मृत्यु के इस रूप मे साक्षात् दर्शन कर रही हूँ। लेकिन फिर भी मेरे भाग्य मे इनका भोगना कहाँ है? यदि प्रियतम न आते, तो मौत तो आ जाती। आज यमराज ने भी मेरी तरफ से मुँह मोड लिया है। मै अब केवल पत्नी ही नही, एक माता भी हूँ। स्वामी मुझे मरने का भी अधिकार न दे गए। अपने पुत्र राहुल के लालन-पालन की मेरे ऊपर जिम्मेदारी छोड़ गए, ताकि मेरी देह तिल-तिल करके जलती रहे, अर्थात् बहुत दिनो तक उनके विरहाग्नि मे तपती रहूँ साराश यह है कि अपने विरह-जन्य दु:खो का वर्णन करके यशोधरा यह कहना चाहती है कि "मेरी मौत भी तो नही होती है।" उसके मत से वह राहुल के लालन-पालन के लिये ही जीवित है।

पृष्ठ ४१ वाष्प = भाप। गेह = घर। ऊष्मा = गरमी। पृष्ठ ४२ उद्धव = उत्सव, अग्नि, ऊधौ। जठर = बूढ़ा। विश्व-वेदना = संसार के कष्ट। शतधा = सौ सौ धाराएँ। कान्ति = चमक। शरदातप = शरदकालीन सूर्य का प्रकाश।

इनकी ·· ·· बनी वही।

मुझको संसार के कण-कण मे संसार की प्रत्येक वस्तु मे अपने प्रियतम का ही रूप दिखाई देता है। चन्द्र की चाँदनी उनके ओजपूर्ण मुखमण्डल पर खेलनेवाली शान्ति के अतिरिक्त और कुछ नही है। शरद काल के सूर्य का सुहावना प्रकाश उनकी विश्व-व्यापी ख्याति का प्रतीक है। छन छन कर आने वाली रंग-विरंगी स्वच्छ किरणों मे मुझे उनके मिलन की आशा दिखाई देती है। जलाशयो के कमल मानो उनके आगमन के कारण प्रसन्न होकर खिल उठे है और कमलों के ऊपर विहार करनेवाले मराल मानो अपनी मधुर कल-कल ध्वनि द्वारा उनका गीत गा रहे हैं। परन्तु हे मेरे यौवन!

तू क्यों मुर्झाया पड़ा है ? जब सारा संसार प्रसन्न है, नब हे मेरे मन ! तू ही क्यो उदास है। मेरे हृदय की कली अभी तक मुरझाई हुई ही है।

पृष्ठ ४३—पुंज=समूह। हेमपुंज=गहरा पाला। गही=ग्रहण की।

पेड़ो ने ·· दूध-दही।

शिशिर ऋतु का यहाँ वर्णन है। पतझड़ आ गया है। यशोधरा को संसार की प्रत्येक वस्तु प्रियतममय ही जान पड़ती है। प्रियतम के जाने के मार्ग का वृक्षों ने भी मानो अनुकरण कर लिया है। प्रियतम ने राज-पाट छोड़ा, पेड़ो ने पत्ते छोड़ दिए, आँसुओ के कारण यशोधरा की दृष्टि धुंधली सी हो गई है। सबकी नजर को धुंधला बनाने के लिए ही मानो संसार मे कोहरा छा गया है। घर-घर मे अंगेठियाँ जल रही है। वह मानो उसके तपस्वी स्वामी के यज्ञ-कुण्ड के लघु रूप है। चारो ओर तेज आग जलती है, फिर भी उसकी कपकपी अभी तक बन्द नही हुई। सर्दी के कारण पानी जम कर रुक गया है, परन्तु यशोधरा के बुरे दिनो के बहनेवाले आँसू नहीं रुके।

तन्तु=तार। पल्लव=पत्ते। निर्झर=झरने। दिन-मुख=सूर्य।

पृष्ठ ४४—सुरभि = पृथ्वी। अम्बर=आकाश। मृदु मृदुल। समीर=वायु। सह=शहनाई। कण्टकित=अंकुरित। कपोल=गाल। अर्घ्य=पूजा का पानी।

ढलक न जाए ·· गुणशाली।

हे गुणों के सागर, जल्दी आ जाओ। कही ऐसा न हो कि तुम्हारे आने के पहिले ही मेरे प्राण निकल जाएँ और तुम्हारे स्वागत के लिए सजाया हुआ यह पूजा का सामान यो ही रखा रह जाए।

कुंज=वृक्ष-लतादि से ढका हुआ स्थान। अंशु=सूर्य। कीर=तोता। शिखी=मोर। चातक=पपीहा। सुध=याद, स्मरण।

उनका ······ · · 'समीर वहाँ ।

यशोधरा कहती है कि वृक्ष लताओं आदि से ढकी हुई मण्डप के समान उनकी वही पहिलेवाली कुटी है और उस पर पहिले की ही भाँति सूर्य की किरणे रंगरेलियाँ करती रहती है, कुटी के चारों ओर कोयल, तोता, मोर आदि पक्षीगण पहिले की तरह अब भी कलि-कूजन किया करते है, पपीहा भी हर घड़ी 'पीव-पीव' की रट लगाए रहता है। साराश यह कि समस्त साज-समाज पहिले जैसे ही है, परन्तु उनमें पहिले के समान आकर्षण नही है, वे खोये हुए से विधवा स्त्री अथवा राजा से रहित राज्य के समान कांतिहीन मालूम होते हैं। हे सखि! यहाँ के पुष्पों की सुगन्धित वायु यदि कदाचित् उनके पास अनायास जाकर यहाँ की याद दिला दे, तो फिर?

पृष्ठ ४५—दरक कर=दबाव से फट कर। दाड़िम = अनार। रट=रटना, घट=घडा, शरीर।

"मुझसे पहिले—इस घट की" का आशय है कि पहिले सबका भला हो, उसके बाद मेरा भला हो।

पृष्ठ ४६—मल=मैल, पाप। क्षीर=दूध।

पृष्ठ ४७—परिपुष्ट=बलवान्। पात्र=योग्य। रुष्ट=अप्रसन्न। तुष्ट=प्रसन्न। छौना=पशु का बच्चा।

जीर्ण=पुरानी। तरी=तली, पेंदा। भूरि भार=उस पर इतना बडा बोझा। प्रखर=तेज। पद-पद पर=कदम-कदम पर।

तन्तु = तार, तागा। घोर जन्तु = हिंस्र पशु। भेरी = एक बाजा। तुच्छ = छोटा। गात्र = शरीर।

क्रीड़ा = खेल-कूद। अधीर = व्याकुल। व्रीडा = लजा।

पृष्ट ५०—चक्र = चक्कर भूतल = पृथ्वी। = भानु=सूर्य। द्वीप=टापू। शलभ = पतंगा, कीड़ा। खलता है = बुरा लगता है। अश्रुसिक्त=आँसुओ से सींचा हुआ। साधक=तपस्वी।

कुशल··········देखूँ कब फलता है।

बुरा समय भी किसी न किसी तरह कट जाता है, परमात्मा की यह क्या कम दया है। कठिनायों को झेलते हुए साधना करने वाला व्यक्ति मनोवांच्छित फल को प्राप्त करके ही चैन लेता है। यशोधरा दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है, हो जाने दो, उसका पुत्र राहुल दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। आँसुओं के बल पर पाला-पोषा नन्हा बालक राहुल देखूँ कब तक शक्तिशाली हो पाता है।

अलिन्द=मकान के बाहरी द्वार के आगे का चबूतरा। भीत होना=डर जाना। प्रतिबिम्ब=परछांई। मृषा=झूठा। भ्रांति=धोखा, भ्रम।

पृष्ठ ५१—सद्=ताजा। दुग्ध-फैन सी शैया=दूध के फैनों जैसे स्वच्छ बिस्तरों वाली चारपाई। प्रसू=माता। विरक्ति=उदासीनता।

पृष्ठ ५२—प्रवाह=बहाव, शब्द-धार। रसाल=आम।

पृष्ठ ५३—निष्फल=व्यर्थ। शोध=खोज। निःश्वास=आह भरना।

पृष्ठ ५४—ममत्व=स्नेह। बराक=बेचारा। पाथेय=राह या मार्ग का भोजन।

पृष्ठ ५५—जगत्प्राण=संसार को जीवित रखनेवाला। लीन होना=समा जाना। मित=परिमित, थोड़ी। माप=नाप। अनुपात=अनुसार। निरुद्ध=घिरा हुआ। सत्ता=स्थिति। विजन=एकान्त स्थान। निश्चलता=शान्ति।

पृष्ठ ५६—स्वस्थ=तन्दुरुस्त। अधिवासी=रहनेवाला, निवासी। मान्य=आदरणीय। पितामह=बाबा। रीते=व्यर्थ, बेकार। थल-वासी=पृथ्वी पर रहनेवाले। विधाता=परमात्मा। मानव=मनुष्य।

पृष्ठ ५८—परितृप्ति=सन्तुष्टि, मन भरना। वंचित=रहित। दैन्य=कायरता। दर्प=अभिमान।

पृष्ठ ५९—चेरी=नौकरानी। हठी=जिद्दी। सुरभि=सुन्दर, सुगन्धित पवन। हिम-बिन्दु=ओस की बूँदे।

पृष्ठ ६०—कलकल=सुन्दर ध्वनि । खर=प्रखर, तेज । करुणा-भरी=दुख भरी । आखेटक=आखेट करनेवाला, शिकारी । आहत=घायल । तात=पिता । रक्षी=रक्षक, रक्षा करनेवाले । बढ चली कहानी=बात बढ चली । विवाद=सवाल-जवाब । सदय=दयावान् । निर्दय=दयाहीन, कठोर हृदय । उभय=दोनों । आग्रही=आग्रह करनेवाले । स्वविषय=अपनी अपनी बात । न्यायालय=अदालत । व्यापक हुई कहानी=बात चारो ओर फैल गई ।

हुआ..........व्यापक हुई कहानी ।

बहेलिया का हृदय कठोर था, वह पक्षी के प्राण लेने पर तुला था । तेरे पिता का हृदय अत्यन्त कोमल था, वे उसके प्राणों की रक्षा करने का विचार कर चुके थे । दोनो मे कहा-सुनी, वार्तालाप होने लगा । दोनो ही अपनी-अपनी बात पर अडे हुए थे और अपने-अपने पक्ष की पुष्टि करने के लिये विभिन्न तर्क उपस्थित कर रहे थे । जब आपस मे कोई निर्णय न हो सका, तो बात अदालत मे गई । यह बात सबके कानो मे पडी और इसकी चारो ओर चर्चा फैल गई ।

पृष्ठ ६१—निर्णय=फैसला । न्याय पक्ष लेता है किसका=क्या फैसला होना चाहिए । निरपराध=निर्दोष । उबारे=बचावे । भक्षक=खा जानेवाला । अंचल धन=गोदी की शोभा । पुष्कर=कमल । पार्श्व=बगल । नासा=नाक । पुट=पर्त । उभय=दोनो । विमोदन=आनन्द देनेवाले । व्यथा-विमोदन=व्यथा को दूर करनेवाले ।

पृष्ठ ६२—मन्द=धीमी । सुस्पदन=सुन्दर स्फुरण । तप्त=दुखी । नंदन=पुत्र । अलक=बाल, लट । छद=ढक लेनेवाली वस्तु । रद=दाँत । पुलक-पूर्ण=आनन्द-पूर्ण ।

पृष्ठ ६३—निशि=रात्रि । जवनिके=यवनिका । सजा=शृंगार । नियति=भाग्य । संसृति=संसार । वेला=समय, काल ।

निशि की अँधेरी . . . जो रही ।

भविष्य अंधकारमय-सा है। उसके गर्भ मे क्या हो, इसलिए मैं आज शान्त हूँ। मेरे भाग्य निरन्तर निर्मित होते रहते हैं। ग्रह-दशा का हेर-फेर ही भाग्य-फल है और ग्रह निरन्तर चक्कर लगाया करते है। मै व्यर्थ ही फल-प्राप्ति का बोझ अपने मन पर रखे हुए हूँ। जो भाग्य में लिखा है वही होगा। तरह-तरह की आशाये करके तथा भाँति-भाँति के विचार बाँधकर मै व्यर्थ ही परेशान होती रहती हूँ। दुःख और सुख दोनों ही अवस्थाओ मे सब लोग दुःखी रहते है सुख दु.ख की बातो का सब लोग हर समय रोना रोया करते है। और संसार के प्राणी अपनी सुध-बुध खोए किंक-र्त्तव्य-विमूढ़ बने रहते है। मै जाग रही हूँ, परन्तु मेरी आँखे अच्छी तरह नहीं खुली है, इसी कारण मै उन्हे पानी से धोकर अपनी नींद भगाने का प्रयत्न कर रही हूँ, तात्पर्य यह है कि सब कुछ जानते हुए भी हम वस्तु-स्थिति देखने मे असमर्थ रहते है। जो हुआ सो हुआ, वर्तमान ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जो बात बीत गई, वह लौटकर आ नहीं सकती, भविष्य का हमें पता नहीं है, इसलिये हमे केवल वर्तमान पर ही ध्यान लगाना चाहिये भूत और भविष्य पर हमारा वश नहीं, वर्तमान सामने है, जिस तरह चाहे उस तरह उसका उपयोग कर सकते है।

दिव=आकाश। रत्नाकर=रत्नो का घर। तारक=तारे।

पृष्ठ ६४—अबल=कमजोर। स्कन्ध=कन्धे। समीरण=हवा। अदृष्ट=भाग्य-चक्र, विधि-गति। सुधानिधि=चन्द्रमा।

पृष्ठ-६५—पुट=सम्पुट। दूब=हरी घास। तृष्णा=प्यास। इन्दु-कले=चन्द्रमा। अर्णव=सूर्य। लोक-संग्रह=संसार के लोगों को प्रसन्न रखना।

पृष्ट ६६—तिमिर=अँधेरा। खग=पक्षी।

लदी मोतियों से हरियानी=पेड़ की पत्तियों तथा घास पर ओस की बूँदे शोभा दे रही है।

पृष्ठ ६७—मुकुर=दर्पण । मंजु=सुन्दर । पंकज=कमल । पराग=पुष्प-रज, फूल की धूल ।

किरणों ······ पराग ।

चारो ओर सूर्य की किरणे फैल रही है और सवेरा हो गया है। सूर्य की किरणे ओस की बूँदो पर पड़कर अनोखी ही छटा दे रही हैं; उनके प्रतिबिम्ब से किरणो के तरह तरह के रंग दिखाई देते है; मेरा दर्पण तेरा मुँह है, मै तो तेरा मुँह देखकर ही जी रही हूँ। तू, सोकर उठ, तब मै अपना मुख देखूँ। हे कमल के पुष्प पर पडी हुई फूलो की पराग के सदृश मेरे कोमल लाल, उठ ।

वैतालिक=राजाओ को जगाने के लिए स्तुति पाठ करनेवाला । स्वस्ति=आशीर्वाद । गोप=ग्वाला । भाजन=बर्तन । हय=घोडा । सित=सफेद । नाग=हाथी । विस्मृत=भूला हुआ । भव=दुनिया । क्षम्य=क्षमा योग्य । तन्द्रा=सोने और जागने के बीच की अवस्था ।

जाग अरे तन्द्रा त्याग ।

हे मेरे लाल, तू जग जा । तेरे कारण मै संसार को भूली हूँ, अपने सब दु:ख भूली हूँ, मैने तेरे सब ऊधम माफ कर दिए है, तुझे देखकर मुझे बचपन की याद आ जाती है, तेरे ही ऊपर मेरी सारी आशाएँ बँधी है। मेरे लाल! ऊँघ छोड़कर जल्दी से उठ बैठ ।

मेष=भेड़ । शावक=बच्चा ।

पृष्ठ ६९—प्रसू=माता । प्रणिपात=प्रणाम, झुककर । अवदात=शुद्ध, निर्मल ।

पृष्ठ ७०—डिठौना=काजल की बिंदी, जो माताएँ अपने बालक के मस्तक पर लगा देती है कि कहीं नज़र न लग जाए ।

लच्छित=लक्षण । लोहित=लाल । भाल=मस्तक । अस्थिर=व्याकुल ।

अंक=गोदी। कलंक-विन्दु=काला टीका कलंक की निशानी है।

चन्द्रमा के मध्य कालिमा है। सब उसे कलंकी बताते है। मेरे मुख पर जब काला टीका लग जायगा, तो लोग मुझे भी संदेह की दृष्टि से देखने लगेगे अथवा दोषी एवं अपवित्र समझने लगेगे।

पृष्ठ ७१ गंगा, गोमती, चित्रा तथा विचित्रा, सभी यशोधरा की सखियाँ है।

अलिन्द=मकान के बाहरी द्वार के आगे का छज्जा। पति-

परित्यक्ता= पति द्वारा त्यागी हुई। आदिकवि=वाल्मकि।

पृष्ठ ७२—स्वामी-वंचिता=पति-विहीना। लोकापवाद=बदनामी। अभ्युदय=उन्नति और कल्याण। पूर्वजाओं=उसके पहिले होने वाली स्त्रिया। कीट-पतंग=कीडा-मकोडा।

पृष्ट ७४—आतुर=व्याकुल। प्रस्तुत=तैयार। वेश-भूषा= पोशाक।

पृष्ठ ७५—आग्रह करना=जिद करना, प्रहार करना=चोट करना। विनय=शील, शिष्टाचार=सभ्यता।

पृष्ठ ७७—मंगल मनाना=भला चाहना। संकल्प=काम करने का निश्चय। रोपे थे=लगाये थे। प्रत्यंचा=डोरी। स्तन्य=स्तन, माँ के दूध।

पृष्ड ७८—यथानियम=अपने आप। विचित्र=अनोखा।

पृष्ठ ७६—तृप्ति=सन्तुष्टि। भार=जिम्मेदार।

पृष्ठ ८०—समवयस्क=बराबर की उम्र वाले। डग=कदम। सुध=याद।

पृष्ठ ८१—स्वावलम्बी=अपने पैरो पर खडा होनेवाला। पौरुष=पुरुषत्व, बल। अनादर=अपमान।

पृष्ठ ८२—सहपाठी=साथ पढने वाला। देव=देवता। दानव=राक्षश। पूर्वजन्म=पहिला जन्म। सहज=आसानी से।

पृष्ठ ८४—आत्मन: प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्=यह वाक्य

'मनुस्मृति' का है। इसका अर्थ है जो बात अपने को बुरी लगती हो वह दूसरो के प्रति न कभी कहो और न कभी करो।

उपयोग = इस्तेमाल। प्रतिकूल = विरुद्ध,। उद्योग = कोशिश।

पृष्ठ ८५—विकसित होना = उन्नति होना। सद्भावना=सुन्दर और श्रेष्ठ भावना।अंचल = आचल।

पृष्ठ ८६—रुचे = अच्छा लगे। वस्त्राभूषण = कपड़े और गहने। स्वादिष्ट = जायकेदार। अरसज्ञ = स्वाद से अपरिचित।

पृष्ठ ९९—आद्रि = पर्वत। अन्तर्दाह = भीतरी जलन। सलिल-प्रवाह = झरने, नदी आदि। पान = पीना। इन्दु=चन्द्रमा। खारी जल-बिन्दु = खारी पानी की बूंदे अर्थात् आँसू।

पृष्ठ ९८-९९ रुदन का हसना··· ·· · ····भगवान्।

यशोधरा दु:ख की करुण-कहानी को वास्तविक संगीत समझती है। वह इसका वर्णन इस प्रकार करती है—

दु:ख मे खुश होना ही सच्चा संगीत है, मेरा हृदय संगीत द्वारा अपने दु:ख को प्रकट करता है, मेरा गाना ही रोना है। हृदय की कसक ही सगीत की मीड़ है, जिस प्रकार मीड देते समय गवैया दोनों स्वरों को स्पष्ट रखता है, उसी प्रकार मेरे हृदय की कसक सुख देनेवाली कसक है। मेरी आहे तबले के समान उस संगीत को मदद करती है। चातक की 'पीव पीव' और कोयल की कूक मेरे आहुति दिए हुए हृदय मे आहुति का काम करती है अर्थात् हृदय मे जलती हुई है ज्वाला मे घी की आहुति का काम करती है। मेरे मुँह से शब्द नहीं निकल रहे है। मेरा यह मौन रहना ही वह मन्त्र है जिसके द्वारा मै अपने देव को बुला रही हूँ। लता के पत्तों को हिलाकर उन पर की धूल को मत हिलाओ उनके फूलों को चुनकर चुपचाप धीरे से प्रिय के चरणों मे चढा दो। फूलो की सुगन्ध ही उनका सब कुछ है। मुझे मत छेड़ो कही 'मेरे मुँह से आह न निकल जाए। मै मौनरूपी पुष्प ही प्रिय के चरणों मे समर्पित

करना चाहती हूँ। मूक वदना ही मेरा सर्वस्व है। मेघमाला को प्रजनन के समय का दुख हुआ। उसे हँसी आ गई। फलतः विजली चमकी। उसने पृथ्वी को छुआ और चारो ओर उजाला करके मेघमाला की प्रसन्नता को प्रकट कर दिया विजली की चमक से यह बात स्पष्ट है कि उसे अपने गर्भ से प्रकट करने के पूर्व होने वाले कष्ट मे मेघमाला प्रसन्न है, क्योकि उसके द्वारा लोक को आलोक प्राप्त होगा। स्वयं दुःख उठा करके ही लोक-कल्याण किया जा सकता है, और उस दुःख मे प्रसन्नता का अनुभव करना ही सच्ची साधना तथा उपासना है।

ऐसा कहा जाता है कि पर्वतो के भीतर अग्नि जला करती है। उसी को लक्ष्य करके यशोधरा कहती है कि यदि अपने भीतर प्रज्वलित अग्नि के कारण पर्वतो मे उत्साह न आता तो लोक का कल्याण करनेवाले प्रजाजन को पीने तथा स्नानादि के लिए जल देने वाले स्वच्छ जल के झरने और उनमे से मधुर कलकल की ध्वनि कहाँ से निकलती ?

यशोधरा कहती है कि दुःखी होकर प्राकृतिक पदार्थ तो लोक को कल्याणकारी वस्तुएँ प्रदान करती है, किन्तु मेरा भाग्य उल्टा है। यदि भाग्य-चन्द्र ही सीधा होता, तो उसमे से अमृत टपकता, परन्तु उल्टा हो जाने से उसमे से आँसू निकल रहे हैं। प्रकृति के विधान के अनुसार मेरी आँखो मे से मीठे जल का झरना बह निकलना चाहिए था, परन्तु ऐसी भी न हुआ। बात एक दम उलटी हुई। उनमे से खारी जल का बहाव तो रहा है। इस खारी जल को कोई भी पान न करेगा और यह व्यर्थ ही बह जायगा वृक्ष के वियोग से दुःखी होकर लता ने पूजा के लिए पुष्प दिए, आकाश के वियोग से दुःखी होकर बादलो ने लोक मे उजाला करने के लिए बिजली दी, पर्वत ने दुःखी होकर प्रजाजन के लिए-

जल-प्रवाह सुलभ किया, और मैंने दुःखी होकर खारी जल के आँसू बहाए जो किसी के नही है। अपने दुःखो पर हँसना ही सच्चा संगीत है।

पृष्ठ १०५—कूल=किनारे। एकाकी=अकेले। एकदेशता=समानता। सृष्टि=संसार।

पृष्ठ १०७—सयत्न=कोशिश करके, यत्न पूर्वक। मिलन-शून्य=मिलनरूपी आकाश। विरह-घटा=विरह की घटा।

दाडिम=अनार। विफल=व्यर्थ। शम=मन और इन्द्रियो का निग्रह। दम=इन्द्रियो और मन को रोकना। व्याधियाँ=विपत्तियाँ। विश्रान्ति=विश्राम, आराम। संयम=इन्द्रिय-निग्रह, मन पर काबू। निर्मम=निर्दय। भव=संसार।

यदि..........भाऊँ।

अगर हम नियमो का पालन करते रहे और अपने मन तथा अपनी इन्द्रियो एवं उनके विषय-भोगो पर पूरा अधिकार रखे, तो हम सदैव एक समान रूप से प्रसन्न रह सकते है। जो सुख मे भोगता नही, तो दुःख मे उसे किस बात का अभाव होगा? जिन्हे लोग सुख और दुःख कहते है, उन्हे साधक एक ही समान समझते है, क्योकि उसकी दृष्टि मे उनमे कोई अन्तर नही होता है। इसी कारण वह सदैव प्रसन्न रहता है, क्योकि उसे कभी किसी वस्तु का अभाव नही रहता है। संयमशील व्यक्ति के लिए बुढापा आराम का समय है और मृत्यु एक नवीन-जीवन का दरवाजा है। नई साधना के लिए नया जीवन देने वाली मृत्यु क्योंकर कठोर हुई? लोक की दृष्टि मे मृत्यु सुख-भोग छीनती है, इसी कारण वह निर्मम है। साधक की दृष्टि मे वह अधिक शक्ति के साथ अपने कार्य में रत होने का मार्ग दिखलाती है, इस लिए निर्दय नहीं है। साधक की सबसे बडी इच्छा यही होती है कि मुझे सारे जगत् और उसके सभी निवासी प्रिय लगने लगे और मै उनका प्यारा बन जाऊँ? इसलिए फिर

मै इस मुक्ति को लेकर क्या करूँगा ? विश्व-प्रेम से अधिक सुख-दायिनी मुक्ति न हो सकेगी ?

पृष्ठ १०८—जरा-मरण=बुढापा और मृत्यु । विभ्रम=चक्कर देकर । भावी पीढ़ी=भावी सन्तान । आत्मरूप=अपना स्वरूप । नीरद=बादल । पथ्य हेतु=औषधि रूप मे, बीमार का भोजन । समुचित=विशेषरूप से ठीक । विधान - विहित=नियमानुकूल । तपस्ताप=तप का ताप ।

रस एक मधुर· ··· ··सदैव मनाऊँ ।

सभी खाने-पीने की चीज़े मीठी तो नही होती है ; अनेक प्रकार के उनमे स्वाद होते है, कुछ खट्टी होती है, कुछ चटपटी ; कुछ नमकीन होती है, कुछ कसैली, मीठी आदि । कुछ वस्तुओ का प्रयोग केवल जीभ के ज़ायके के लिए ही किया जाता है और कुछ का प्रयोग औषधि रूप मे किया जाता है । इन्द्रियो को नियम के अनुसार भोग करना चाहिये । रोगी यदि स्वाद के लिए मन-चाही वस्तुओ का प्रयोग करने लगे, तो कुपथ्य है, उसके लिए वे रस न होकर विष बन जाएँगी । इसी प्रकार इन्द्रियो के भोग मे सदैव संयम होना चाहिए । जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियो को जीत लेता है, केवल आवश्यकतानुसार ही विषय-भोग करना अपने जीवन का उद्देश्य समझता है, वह विश्व को विजय कर लेता है । इसलिए मै भगवान् से सदा यही प्रार्थना करती हूँ कि वह मुझे अपने कर्तव्य पालन करते रहने की शक्ति दे । मुझे मुक्ति,भुक्ति कुछ भी नही चाहिए ।

पृष्ठ १०६—विभाव=भावो को उद्दीप्त करनेवाली वस्तुएँ । कैवल्य=मोक्ष । काम=इच्छा । शतबार=सौ बार । क्षेम=सुख ।

आओ············गाऊँ ।

हे प्रियतम ! आओ, आप और मैं दोनों ही संसार को प्रेम-भाव से भर देगे । चाहे अपने काम में हम सफल हों, या न हों,

फिर भी हमारा नाश न होगा। अपना कर्तव्य हमको करना चाहिए। हमें चाहिए कि सर्वथा निष्काम होकर काम करें, क्योंकि मुक्ति, मोक्ष की इच्छा करना ही काम-इच्छा है। मोक्ष की इच्छा से किया हुआ कार्य 'निष्काम-कर्म' नहीं होता है। संसार के कल्याण के लिए प्राणी मात्र की सेवा करने के लिए बार,बार मरने और जन्म लेने में हमें प्रसन्नता होगी, विश्व की सेवा करने के लिए हमें मुक्ति-प्राप्त से सौ बार मरना अधिक प्रसन्नता की बात होगी। मैं प्रेम-संगीत और संदेश सुनाती रहूँगी और तुम उन्हें श्रवण कर सुखी होना। ऐ मुक्ति! मैं तुझे प्राप्त करके क्या करूँगी? तात्पर्य यह है कि विश्व-सेवा और मानव-जीवन का चरम लक्ष्य होना चाहिए! जीवन की चरम सफलता प्राणी-मात्र की सेवा है।

खला=बुरा लगा, खटका। भव-नाट्य=संसाररूपी नाटक। कला=खेल। भुवन=संसार। आशंकाएँ=भावी अनिष्ट के विचार। अवश=विवश। अधीना=दूसरे के बन्धन में। चिरलीना=हमेशा लीन रहनेवाली।

पृष्ठ ११०—सजनी=सखी। शोणित=रक्त। वर्ण=रङ्ग। झावरा=झांया। पैठा=बैठा हुआ। विलपना=रोना। अचल=चलने योग्य न था। सुरसरिजल=गंगा जल। अमृतोदन=अमर करने वाली वस्तु। कलपना=तड़पना।

पृष्ठ १११—विहंग=पक्षी। अन्तरंग=अन्त:करण। वंचक=धूर्त, छली। विधि=विधाता। प्रत्यय=विश्वास, निश्चय।

पृष्ठ ११२—दिव्य=श्रेष्ठ। वात=हवा, आंधी। उत्तुङ्ग=ऊँचा। गिरा=वाणी। अपारा=जिसका पार न हो, अनन्त। प्लावित=भर दे, तृप्त कर दें। अंग=स्थावर, जड़-जङ्गम। अवदात=शुद्ध, पवित्र।

पृष्ठ ११३—यतियो=योगियो। व्रतियो=साधको। अभय=निडर। भूधर-भूप=पर्वतों के राजा। कूप=कुआ। साक्षी=गवाह

परा=पराई स्त्री। मिथ्या भय है जन्म-जरा के=जन्म और बुढापे से डर करना व्यर्थ है।

पृष्ठ ११४—वधू=पत्नी। पूर्ति वासना=काम तृप्ति। धर्म धन=धर्म पति। ध्रुव धरि=धैर्यवान् तथा अपने निश्चय पर अटल रहने वाले। पक्वान्न=पकवान। मृग=हिरन। केकी=मोर। कीर=तोता। व्रत=नित्य-नियम। ललित=सौम्य स्वरूप वाले। गण्य=गिनी जाने वाली, प्रतिष्ठित। वार दूँ=न्यौछावर कर दूँ। लोकार्थ=लोक का कल्याण करने के लिए। पावन=पवित्र करने वाला। चीर=चद्दर।

कुटिल ·· ·· ··शरीर

हे गंगा तेरे जल की निर्मलता एवं पवित्रता के कारण लोक तेरी इस टेढ़ी चाल को भी बुरा नही कहता है। पवित्रकारी होने से तू लोक के लिए पवित्र, आदर की पात्र बनी हुई है। मेरा भी मन होता है कि तेरे निर्मल जल के ऊपर अपनी मोतियो और हीरो की यह माला निछावर कर दूँ। तू लोक का कल्याण करने के लिए बहती चली जा रही है। तेरे शान्त जल को देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो तूने एक सुन्दर ओढ़नी ओढ रखी है। मै तो किसी योग्य न रही, केवल रो लेती हूँ। सिवाय रोने के मै कुछ नही कर सकती हूँ।

पृष्ठ ११५—नदीश=समुद्र। प्रदीप-दान=दीपमालिका। तुच्छ=छोटा सा। सन्धान=लक्ष्य, निशाना। धाय=दाई। पद्मिनी=कमलिनी। छीन=क्षीण, दुर्बल। पीन=पीण, तगडा।

पृष्ठ ११६—साले=कसक पैदा करती है, काँटे सी लगती है।

पृष्ठ ११५-११६—जल के ' नवीन।

अपनी दुखिया माता का सम्बोधन करके राहुल कहता है कि—"माँ, मछलियाँ तो पानी मे ही रहती है। तेरी आँखे भी मछलियो की जैसी है। ये सदा पानी से भरी रहती है—परन्तु फिर भी मुर-

झाई एवं दु.खी बनी रहती है। तू कमलिनी के समान सुन्दर और कोमल है, परन्तु फिर भी इतनी दुबली क्यो है ? तेरा मन तो सदा साहस से भरा रहता है, परन्तु तेरा शरीर नीरस तथा मन्द पड़ा हुआ है। दूध से भरा हुआ शरीर तो तूने मेरे लिए लगा दिया है तथा अपने प्रेमी मन को पिता जी के ऊपर निछावर कर दिया है। बड़े दुख की बात है कि तेरा एक मात्र सहारा त्याग है, अर्थात् सारा जीवन क्या तुझे योही इसी प्रकार व्यतीत करना पडेगा ? मै लाचार हूँ, मै तेरे लिए कुछ नही कर सकता, मेरे जीवन को धिक्कार है।" अपने बेटे की करुणा-भरी बात सुनकर यशोधरा उत्तर देती है—"हे मेरे लाडले ! पुरानी बाते मेरे हृदय मे काँटे की तरह सदैव चुभी रहती है। परन्तु तुझे उनसे क्या मतलब ? तेरा बाल बाँका भी न हो पायगा। मै तेरे हित-साधन मे सदैव लगी रहूँगी, तू नित्य नई उन्नति करता जा।"

पृष्ठ ११७—रस-रंग=आनन्द। सती=दक्ष की पुत्री पार्वती का नाम सती था। शिवा=शिव की पत्नी। दिवा=दिन। सौध=महल। शिखर=चोटी, ऊपर का भाग। आतप=धूप। तुहिन=पाला। शचि=शुभ्र। सुरभि=सुगन्ध। अदृश्य=दिखाई न देने वाले, आँखों से दूर। धा रही=आ रही, घुस रही। नलिनी=कमलिनी। छवि=शोभा। मौन=चुपचाप। अंक=गोदी। मधुप=भौंरा, भ्रमर। गिरा=वाणी।

सती ...... गा रही।

प्रात: समय की शोभा देखकर राहुल अपनी माता से कहता है कि—

माँ ! देख यह स्वच्छ उषा ऐसा लग रही है, जैसे शिवजी की पत्नी सती। वह तेरे समान ही गम्भीर है तथा विचार-मग्न है, महल के ऊपरी भाग पर की सुनहली धूप ऐसी लग रही है जैसे तेरे अंचल की मेरे ऊपर छाया हो। जिस तरह तेरी आँखों से

आँसू की बूँदे गिरती हैं उसी प्रकार किरणों की गर्मी से पाले की छोटी-छोटी बूँदे नीचे को गिरती है। पवित्र स्नेह एकाग्र होकर मानो तप रहा है। ठण्डी और धीरे-धीरे बहनेवाली हवा वन की ओर से तरह-तरह की सुगन्धि' ला रही है, ऐसा मालूम होता है कि दूर ठहरे हुए पिता को अनुभूति तेरे भीतर प्रवेश करती चली जा रही है। सूर्य को कमलिनी देखती है, तू पिता की छवि को मौन रूप मे स्मरण करके उसी की ओर देख रही है। कमलिनी के कोष मे भ्रमर है तेरी गोद मे मे बैठा हूँ। दोनो बाते एक ही है। वाणी चाहे कमलिनी के गुण गाए, चाहे तेरे गुणो का बखान करे।

इस छन्द मे गुप्त जी ने यशोधरा और कमलिनी मे पूर्ण साम्य स्थापित किया है। कमलिनी मे बैठे भौरो की भॉति राहुल को उसकी गोदी मे बैठा बताया है।

पृष्ठ ११८—सन्धान=निशाना। अबोध=अज्ञान। मरण-चौरासी=चौरासी लाख जन्म मरण। तितिक्षा-सहनशीलता, क्षमा।

पृष्ठ ११६—शतदल=कमल। दो दो मेघ बरसते=दोनो आँखों से आँसू बह रहे है।

जल मे शतदल····· ·····वनवासी।

ऐसा नही है कि घर मे रह कर तुम केवल घर के ही बन जाओ और भगवान् की उपासना, पूजा न कर सको। जिस तरह कमल पानी मे रहने पर भी पानी से ऊपर रहता है, उसी प्रकार तुम भी घर मे रहकर गृहस्थी के चक्करो से दूर रह कर उससे निर्लिप्त रह सकते थे। तुम घर पर होते, तो हम लोग तुम्हे देखने को क्यो तरसते? देखो, हे प्रियतम! यहाँ दो-दो बादल बरस रहे है, मेरी दोनों ऑखों से अविरल आँसू बहते चले जा रहे है। एक ही बादल के बरसने से लोक की प्यास बुझ जाती है। यहॉ दो-दो बादल बरसते है, फिर भी मै प्यासी ही हूँ—कैसी है यह विडम्बना तुम स्वयं देखो न! तुम्हारे दर्शनो की इच्छा मे मै बराबर रो रही

हूँ। ये आँसू तो तुम्हारे दर्शन होने पर ही बन्द होंगे। तुम्हारे दर्शन ही केवल मुझे तृप्त कर सकेंगे और कोई नहीं।

नीरस=फीका, बिना स्वाद। स्तब्ध=चुप। चेतना=जीवन। रुद्ध=रुकी हुई। पुलकित=प्रसन्न। अत्रभवति=पूज्या, माननीया।

पृष्ठ १२० – संसृति=विश्व। राज-ऋद्धि=राज्य के समस्त सुख अनुगति=अनुगमन, अनुसरण। पदो पर प्रणत है=चरणों में लोटती है। वृत्त=समाचार। लोचन=आँखें।

पृष्ठ १२१—मार=कामदेव। साध्वी=पतिव्रता पत्नी। कृतकृत्य=धन्य, विला गई=खत्म हो गई।

पृष्ठ १२२ – निदान=आदि या मूल कारण। रहस्य=भेद। प्रवर्त्तन=प्रचार। सृष्टि-भेदिनी=समस्त विश्व के ऊपर पड़ने वाली। चिर किंकरी=हमेशा की दासी। वंचिता=बची, विहीन। विस्मय=आश्चर्य।

पृष्ठ १२३—हर्ष-विह्वल=हर्ष से व्याकुल, अत्यन्त प्रसन्न। नेपथ्य=रंगशाला। प्रस्थान=चला जाना। आयोजन=तैयारी। शुद्धोदन=गौतम बुद्ध के पिता।

पृष्ठ १२४—चरणों में नत होना=सादर शीश झुकाना अक्षय=कभी भी नष्ट न होने वाला।

गण्य=गिना जाने वाला। गेय=गाया जाने वाला। प्रस्तुत=तैयार। समुद्यत=तैयार। सर्वदा=सब तरह। अपेक्षा=आवश्यकता।

पृष्ठ १२५—अबलाजनो=स्त्रियों। दर्प=घमण्ड। स्वत्व=अपनापन।

पृष्ठ १२६ – धरित्री=पृथ्वी। शफरी=मछली। विहंगिनी=पक्षी। भव=संसार। मानिनी=मान करनेवाली। मुक्ति-मुक्ता=मुक्ति रूपी मोती। निर्मम=निर्दयी, कठोर। ग्राह्य नहीं=ग्रहण करने योग्य नहीं।

झूठे सब नाते..............जा।

विश्व के जीवमात्र तेरी दया के पात्र है। संसार के एक जीव हम भी है। इसीलिये आकर हमे इस विपत्ति से उबार लो। पिता, पत्नी आदि के नाते से नही आता है, तो न आए, क्योंकि तेरे विचार से वे तो सब झूठे है।

पृष्ठ १२७—बद्ध=बन्धन। निर्गुण=निराकार, पाद-पद्म-मधु-पान=चरण कमलो का चरणोदक पान करूँगा। नश्वर=नाशवान्।

अमर-पद-लाभ=जीवन-मरण के चक्कर से मुक्त हो गए। अमिताभ=बुद्धदेव। अंजलि=हाथ। भाजन=बर्तन। तुल्य दृष्टि=सबको समान दृष्टि (भाव) से देखने की शक्ति,- तुम्हारे लिए सब समान है। अपेय=न पीने योग्य, अग्रहणीय। पाथ=जल।

पृष्ठ १२९—क्षार=खारीपन। आँखे भरना=रो देना। धव=पति। फबना=शोभा पाना। उद्भव=उत्पत्ति, जन्म। नवता=नवीन। प्रतिपाल=रक्षक। वेला सी=प्रलयकालीन समय के समान। धुलूं=पवित्र हो जाऊँ।

पृष्ठ १३०—अनुपम उद्योगी=अनोखा प्रयास करनेवाले। जनार्दन=भगवान्। विभव=सुख-सम्पत्ति। पराए=दूसरो के।

पृष्ठ १३१—कन्था=गुदडी, कथरी। जाया=पत्नी। यति=योग। घटा=जल भरे बादल। ग्रीवा=गर्दन। शिखण्ड=मोर की पूँछ। शिखी=मोर। गिरा=वाणी।

आली · 'आशा रखो भाई!

गौतम को सिद्धि तो मिली, परन्तु उन्होने अपनी पत्नी यशोधरा को अपनी दया से अलग ही रखा। इसीलिये यशोधरा का मन गिरा है। इसी बात का लक्ष्य करके वह कहती है कि हे सखी! पुरवा हवा तो चली, परन्तु पानी लानेवाले बादल न आए। हवा के बहाव को देखकर हे चातक! तूने स्वाति-जल के लोभ में

व्यर्थ ही गर्दन ऊपर करके चोंच खोली। यहाँ बादल और वर्षा कहाँ है? मोर का भी यही हाल हुआ। हवा का बहाव देखकर वह समझा था कि अब बादल घिर आएँगे और वर्षा होगी। इसी लिये प्रसन्नतावश नाचने के लिए उसने अपनी पूँछ उठाई परन्तु बादलों को न देखकर वे भी अपना मन दु:खी कर रह गए और उसने अपने पंख नीचे कर लिए, वे न तो नाचे और न कूके। भाई जब प्रकृति ही उलटी हो जाए तो फिर किसी की क्या चल सकती है? परन्तु हमें फिर भी निराश नहीं होना चाहिए। प्रकृति के ऊपर परमात्मा है। वह उसका निर्माणकर्ता है। वह सब कुछ ठीक कर देगा। यदि प्रकृति उलटी है, तो हो जाने दो। परमात्मा उसे अवश्य ही ठीक रास्ते पर लगा देगा। पुरवा हवा के साथ इस समय घटा नहीं आई, तो मत आने दो। वह अब थोड़ी देर पश्चात् आ जायगी, गौतम अभी नहीं आए, न सही। भगवान् शीघ्र ही उन्हें आने के लिए प्रेरणा करेंगे। मैं इसी आशा पर जी रही हूँ, तुम सबको भी भगवान् की शक्ति और न्याय में विश्वास रखना चाहिए।

पृष्ठ १३२—प्रत्यय=विश्वास। स्थिर है जीव=प्राण बने हुए है। प्रेरा=प्रेरित।

पृष्ठ १३३—आलोक=प्रकाश। दरसाय=दिखाई दे। धूलि-धूसरा=धूल से सनी हुई। गौरिक दुकूलिनी=गेरू के रंग की ओढ़िनी ओढ़े हुए। सुधांशु=चन्द्रमा।

आई ... अश्रु छलके।

गौतम बुद्ध की राह तकते-तकते पूरा दिन व्यतीत हो गया। संध्या हो गयी। राहुल अपनी माँ से कहता है—"माँ हो गाएँ वन से लौटने लगी है, उनके चरणों की धूलि के कारण आकाश आच्छादित हो रहा है। इस समय की संध्याकालीन शोभा और तेरे मुख की शोभा में समानता दिखाई देती है। तेरा मुख मलिन

है। क्षितिज मे धूल उड़ने से संध्या का मुख भी मैला हो गया है। तू गेरुए कपड़े पहिने है, सन्ध्या-समय का आकाश भी गेरुआ होता है। ढलती हुई सन्ध्या का आकाश लाल रंग का ही होता है, ऐसा लगता है कि सन्ध्या ने लाल रंग की ओढनी ओढ रक्खी है। इस समय आकाश मे दो तारे दिखाई देने लगे है; तेरी दोनो ऑखो मे भी ऑसू की बूँदे दिखाई दे रही है। उधर संध्या-कालीन आकाश का वर्ण लाल है, इधर यशोधरा ने भी गेरुए वस्त्र पहन रखे है।

कवि ने संध्या-समय के आकाश की तुलना यशोधरा से की है। दोनों मे समानता दिखाई है।

पृष्ठ १३५—वराकी=बेकारी। बालुका=बालू। घात=हत्या।

पृष्ठ १४०—भेरी=आवाज, बाजो की आवाज़। स्वागत-भेरी=स्वागत के हेतु किए जानेवाले बाजो-बाजो के शब्द।

पृष्ठ १४१—कपिलनगर नरराज=कपिलवस्तु के राजा सिद्धार्थ। गाज=बिजली। अजिर=आँगन। अपवर्ग=मोक्ष, मुक्ति।

पृष्ठ १४३—बान=जिद। तत्रभवान=पूज्य, माननीय। आर्त्त=दुखी। गुह=भीलराज निषाद। प्रतिदान=बदला। सुधा-सन्धान=अमृत के समान श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति। मैत्री=मित्रता, स्नेह।

पृष्ठ १४४—उपालम्भ= उलाहने। आभा=छाया। प्रणति=विनती। प्रणय=विश्वास। परिणति=फल। पक्ष्म=ऑख की बरौनी।

पृष्ठ १४६—पैतृक दाय=पैतृक सम्पत्ति। असत् से सत्=मिथ्या से सत्य की ओर ले जाओ। तिमिर से ज्योति=अंधेरे से उजाले की ओर चल। (तमसो मा ज्योतिर्गमय)। अनुरूप=योग्य।

पृष्ठ १४७—बुद्ध गच्छामि=बौद्धो की प्रार्थना है—बुद्ध की शरण में जाता हूँ, धर्म की शरण मे मै जाता हूँ। मै बुद्ध द्वारा प्रवर्तित प थ की शरण मे जाता हूँ। मैं बुद्ध द्वारा प्रवर्तित पन्थ की शरण मे जाता हूँ।

समाप्त

सम्भावित प्रश्न

(१) यशोधरा किस प्रकार की रचना है ? पूर्ण रूप से समझाइए।

(२) गुप्त जी के सभी काव्य-ग्रन्थो मे 'यशोधरा' का कैसा स्थान है ? वर्णन कीजिए।

(३) नारी भावना का जो प्रदर्शन गुप्त जी ने यशोधरा मे किया है, उसका वर्णन उदाहरण-सहित कीजिए।

(४) यशोधरा मे गुप्त जी ने यशोधरा के विरह-वर्णन मे कहाँ तक सफलता पाई है, पूर्ण रूप से अपने विचार प्रकट कीजिए।

(५) यशोधरा मे 'प्रकृति-चित्रण' सुन्दर हुआ है। इस कथन की पुष्टि कीजिए।

(६) साकेत की उर्मिला और यशोधरा की यशोधरा में तुलना कीजिए और यह निश्चय कीजिए कि कौन दोनो मे श्रेष्ठ है ?'

(७) गुप्त जी ने यशोधरा में भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनो का बहुत ही अच्छा समन्वय किया है, स्पष्ट कीजिए और उदाहरण भी दीजिए।

(८) यशोधरा मे आधुनिकता का चित्र खीचिए और स्पष्ट कीजिए. कि आधुनिकता का कहाॅ तक समावेश है।

(९) गुप्त जी ने अप्रत्यक्ष रूप से अपनी धार्मिक भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण किया है। स्पष्ट कीजिए।

(१०) यशोधरा काव्य-ग्रन्थ में राहुल का स्थान निश्चित कीजिए ?

(११) यशोधरा मे सास्कृतिक आधार पर अपने विचार प्रकट कीजिए ?